उपनिषत्संग्रह

UPANIṢAT-SAṄGRAHA

[ईश - केन - कठ]

—सत्यकाम वर्मा

वेद प्रतिष्ठान

नई दिल्ली

ओ३म्

उपनिषत्संग्रह

UPANIṢAT-SAṄGRAHA

[ईश - केन - कठ]

व्याख्याकार : सत्यकाम वर्मा

वेद प्रतिष्ठान

नई दिल्ली

वितरक :
भारतीय प्रकाशन
नई दिल्ली-११०००५

UPANISAT-SAṄGRAHA

Dr. Satyakam Varma

मूल्य : बारह रुपए पचास पैसे

मुद्रक :
जनशक्ति मुद्रण यन्त्रालय,
के-१७, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२

समर्पण

धर्मप्राण श्री माता ब्रह्मज्योति जी 'आश्रम'

के कर कमलों में

सादर सश्रद्ध

निबन्धन

पूर्वभूमिका

उपनिषद् : महत्त्व

कभी जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् एवं दार्शनिक शॉपन हॉवर ने उपनिषदों को 'आत्मा की शान्ति का अपूर्व स्रोत' कहा था। उसने उन्हें 'विश्व की उच्चतम दार्शनिक कृतियां' भी कहा था। तब से आज तक पूर्व और पश्चिम के अनेकानेक विद्वानों ने उपनिषदों का गम्भीर अध्ययन करके उन्हें 'वेदोत्तरकाल की सब से महत्त्वपूर्ण रचना' स्वीकार किया है। यह कथन अनेक दृष्टियों से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। निस्सन्देह इनमें वेद की ऋचाओं में आई जिज्ञासाओं को ही स्वतन्त्र दृष्टि से उठाकर उन पर वेदानुकूल दृष्टि से विस्तार से विचार किया गया है। दोनों में अन्तर यह है कि जहां वैदिक ऋचाओं और मन्त्रों में मानवीय मन की उच्चतम भावनाओं को अभिव्यक्त किया गया है, वहां उपनिषदों में उन्हीं भावनाओं की दार्शनिक दृष्टि से छानबीन और विवेचना की गई है। पर यह छानबीन इतने सरल और सीधे ढंग से की गई है कि उनमें दर्शनों की सी गहराई, गम्भीरता, दुरूहता या कठिनाई कहीं भी आने नहीं पाई है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वक्ता या लेखक उस जिज्ञासाविशेष के सम्बन्ध में अपनी स्वानुभूति को ही यथानुभूतरूप में व्यक्त कर रहा हो। विषय के उपस्थापन का क्रम इतना सरल एवं मोहक है कि अधिक से अधिक अल्पधी व्यक्ति भी उसे समझने में कठिनाई अनुभव नहीं कर सकता। किसी भी बात को इस क्रम से उठाया जाता है कि कोई अनपढ़ व्यक्ति भी उस विषय को अपने स्तर पर सम-

झने में समर्थ हो सके । किसी भी समस्या का आरम्भ पहले भौतिक स्तर से करके फिर आध्यात्मिक दुरूहता तक उसे ले जाया जाता है । इसके साथ ही उपनिषदों की भाषा भी इतनी अधिक सरल है कि उसे अल्पज्ञतम व्यक्ति भी समझ सकता है ।

उपनिषदों की रचना मूलतः प्रश्नोत्तर शैली में हुई है । ऐसा लगता है, जैसे गुरु-शिष्य के बीच हुए संवादों को ही 'उपनिषद्' के रूप में निबद्ध कर दिया गया हो । अधिकांश उपनिषदों में कथा-शैली को भी अपनाया गया है। परन्तु कथा-शैली के साथ भी संवाद-शैली या प्रश्नोत्तर-शैली का मिश्रण वहां हुआ है । कुछ भी हो, 'उपनिषदों' का जन्म गुरु-शिष्य के बीच शंका-समाधान के क्षणों में ही हुआ होगा; क्योंकि स्वयं 'उपनिषद्' शब्द इस बात की ध्वनि देता है । 'उप' का अर्थ है 'समीप' और 'निषद्' का अर्थ है 'बैठना' । जिज्ञासु या शिष्य जब गुरु-चरणों में बैठकर अपनी शंकाओं का निवारण करवाता था, तब उन दोनों के बीच हुए वर्तालाप से ही इन उपनिषदों का मूलतः जन्म हुआ होगा । बाद में लेखकों या विचारकों ने स्वतन्त्ररूप में भी नए-नए वैदिक विषयों को लेकर उनपर चिन्तन ग्रारम्भ कर दिया । परन्तु दोनों ही दशाओं में 'पास बैठने की इस समीपता' का एक ग्रन्य मूल उद्देश्य अक्षुण्ण रहा : 'आत्मा और परमात्मा के परस्पर साक्षात्कार और समीप आजाने की भावना' । और, यह भावना सभी उपनिषदों में समान रूप से व्यक्त हुई है ।

'ईशोपनिषद्' का महत्त्व

प्रायः सभी विद्वानों ने ईशोपनिषद् को सर्वप्रमुख उपषिद् माना है । यद्यपि यह भी सत्य है कि इस उपनिषद् में न तो किसी संवाद-शैली का ही पुट है और न ही इसमें किसी प्रकार के शंका-समाधान का समावेश है । फिर भी इसे सर्वप्रमुख मानने का कारण यह है कि ग्रपने मूल रूप में

इसे 'वेद' का ही अंश या अंग कहना चाहिए। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय को लगभग अविकल रूप में ही इसमें रख दिया गया है। अन्तर केवल इतना है कि 'हंसः शुचिसत्' वाला एक मन्त्र इसमें अधिक है, 'हिरण्मयेन' मन्त्र का उत्तरार्द्ध किंचित् परिवर्तन के साथ आया है, तथा एकाध मन्त्र के क्रम में अन्तर है। इनके अतिरिक्त कोई अन्य अन्तर नहीं है। इस पर भी इसे एक स्वतन्त्र एवं सर्वप्रमुख उपनिषद् माना गया है।

सम्भवतः ऐसा करने का एकमात्र कारण यह है कि इस सूक्त या अध्याय का मन्त्र-संयोजन ही कुछ इस ढंग से हुआ है कि उसमें जीवन और जगत् के केवल दार्शनिक और आलोचनात्मक तथ्यों का ही उल्लेख हुआ है। जीवन में और मृत्यु के बाद की स्थितियों के सम्बन्ध में जो कुछ भी विचार्य है, उसे एक ही जगह यहां अत्यन्त गहराई के साथ उठाया गया है। आरम्भ में उपनिषदों का प्रधान विषय भी यही रहा प्रतीत होता है। इसे ही 'आध्यात्मिक चिन्तन' के नाम से कहकर बाद में उपनिषदों का प्रधान विषय घोषित किया गया।

'ईशोपनिषद्' के महत्त्व का एक और भी कारण है। आदि शंकराचार्य ने जब अपने 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के सिद्धान्त को सप्रमाण सिद्ध करने के लिए वैदिक साहित्य का अवगाहन आरम्भ किया, तब उन्हें 'वेद' और 'दर्शन' के बीच की कड़ी के रूप में 'उपनिषद्' ही दिखाई दीं, जिनमें उन्हें जीवन की निस्सारता का आभास झलकता दिखाई दिया। उनकी दृष्टि में यह 'ईशोपनिषद्' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हो गई, क्योंकि उनके अनुसार इस में जगत् की निस्सारता को सर्वप्रधान रूप में उद्घोषित किया गया था। उधर वेदानुयायी विद्वानों के लिए तो यह सर्वप्रथम उपनिषद् थी ही, क्योंकि इन अट्ठारह मन्त्रों के भीतर जीवन की वास्तविकता और मृत्यूत्तर उसकी स्थिति के बारे में सब तथ्य

अत्यन्त संक्षेप से समाहित होगए थे। उनके लिए जीवन को कर्ममार्ग की प्रेरणा देने वाला इससे बड़ा उपदेश जैसे कहीं अन्यत्र मिलना ही असम्भव था। अतः जगत् को सत्य और मिथ्या कहने वाले दानों ही पक्षों के लिए 'ईशोपनिषद्' प्रधानतम गिनी जाने लगी।

वास्तविक उपदेश

किसी प्रियजन की मृत्यु के अवसर पर जो विचार किसी वेदविद् के मन में उठने चाहिएं, उनका एकत्र समन्वय ही इस उपनिषद् में किया गया दीखता है। जीवन की चरम परिणति मृत्यु के रूप होती है। हम जो कुछ भी पा सकते हैं, उसे जीवन या पांचभौतिक शरीर की सांस चलते ही पा सकते हैं। मृत्यु के आते ही 'पाँचों भौतिक तत्त्व आग में जलकर भस्म के रूप में ही शेष रह जाएंगे।' परन्तु जीवन मृत्यु के डर की छाया में भी तो नहीं बिताया जा सकता। तब इस जीवन का सार क्या है और उसे जीने का सही तरीका क्या है? यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय, और 'ईशोपनिषद्' के रूप में उसके पुनर्विन्यास, में इसी रहस्य को समझाया गया है। संक्षेप में इस उपनिषद् का उपदेश इस प्रकार है:

"यह मानव शरीर अग्नि, पृथ्वी, आदि जिन पाँच भौतिक तत्त्वों से बना है, वे सभी तत्त्व मृत्यु के बाद 'भस्म' होकर इसी भौतिक मिट्टी में मिल जाएंगे। किन्तु इस शरीर को चलाने वाला आत्मा फिर भी अमिट और अमर रहेगा। वह ही इस शरीर में रहकर इसको चलाता है। वह ही काया के जरा-मरणादि धर्मों से अछूता और अप्रभावित रहता है। परन्तु इस सत्य को जानकर भी हर मानव अपने जीवन को अमरता की सच्ची राह पर नहीं ले चलता। ऐश्वर्य और विलास के चक्र में फँस-कर मनुष्य संसार में ही रमा रह जाता है। वह नहीं जानता कि यह 'सम्भूति' का मार्ग न होकर 'असम्भूति' और विनाश का मार्ग है।

इसके द्वारा हम जीवन में ही मृत्यु को अनुभव करते रहते हैं। यदि हम इस रहस्य को जानकर जीवन में ही 'अमर' बनने का यत्न करें और 'अमृत' की खोज करना चाहें, तब हमें विनाश के इस पथ की वास्तविकता को जानकर इस पर बढ़ने से बचने का यत्न करना चाहिए। यही बात **ज्ञान और अज्ञान** के सम्बन्ध में है। हम प्रायः **अज्ञान** की बातों में ही रमे रह जाते हैं। हमें चाहिए कि उन बातों की निस्सारता को पहचान कर हम वास्तविक **ज्ञान** को पाने की कोशिश करें। अज्ञान हमें इस जगत् के बाह्य ऐश्वर्य में रमाए रखता है, जबकि ज्ञान हमें इस जगत् से परे की वास्तविकता को समझाने का माध्यम बनता है। इस प्रकार 'असम्भूति' और 'अज्ञान' को छोड़ना जहां अभीष्ट है, वहां उनकी वास्तविकता से परिचित होना भी नितान्त आवश्यक है। अकेले 'सम्भूति' या 'उन्नति' के तथा 'ज्ञान' के पथ को पहचानकर भी हम 'अज्ञान' और 'विनाश' के गर्त में गिरने से नहीं बच सकते। इसके लिए हमें उनकी वास्तविकता का भी परिचय होना चाहिए। तभी अज्ञान और मोह के इस भटकाने वाले मार्ग को छोड़कर हम वास्तविक आत्मज्ञान और आत्मोन्नति के मार्ग को अपनाने में सफल हो सकते हैं। तब हम 'अमरता' की उस स्थिति या 'अमृत' को पालते हैं, जिसे पाने के बाद इसी जीवन में हम स्वयं को 'अमर' अनुभव कर सकते हैं। अमरता की इस स्थिति को पाने के बाद हमें शरीर के विकारों या इसके माया-मोह के प्रति आसक्ति नहीं रह जाती। तब हम अपने और चारों के जीवन में एकरूपता और समरसता अनुभव करने लगते हैं। जो व्यक्ति सारे विश्व के जीवन में इस प्रकार की एकता और समरसता को अनुभव कर लेता है, वह इस संसार से भागने का यत्न नहीं करता। बल्कि मृत्यु से बिना डरे वह अपने कर्म और कर्तव्यों को पूरा करने का यत्न करता है। तब वह यह भी अनुभव कर लेता है कि यद्यपि यह संसार ऐश्वर्य और ईश्वरीय देनों से भरा पड़ा है, तथापि यह केवल किसी अकेले व्यक्ति के भोग के लिए ही नहीं है। जब सब में एक ही तत्त्व है, तब

किसी एक का ही अधिकार किसी एक वस्तु पर क्यों? जो कुछ भी हमारा है वह सबका भी है, और जो सब के लिए है वही हमारा भी है। जो व्यक्ति इस सत्य को पहचान लेता है, उसे संसार में किसी भी प्रकार का मोह या शोक व्याप्त नहीं हो सकता। वह सच्चा 'अमर' बन जाता है। क्योंकि उसने तब मृत्यु के भय को पार कर लिया होता है। तब वह जो कुछ भी करता या भोगता है, यह सोचकर ही कि यह सब ईश या परम आत्मा का है, मेरे अकेले का नहीं। अतः मुझे सबके साथ बाँट-कर ही इसे खाने का यत्न करना चाहिए।" यही है सार 'ईशोपनिषद्' के उन १८ मन्त्रों का, जिन को वैदिक चिन्तन में सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है तथा जिनमें जीवन को सही रूप में भोगने का वास्तविक वैदिक मार्ग बताया गया है। दूसरे शब्दों में, ईशोपनिषद् का सन्देश है : "जीवन को खुली आँखों से परखो और ऐश्वर्य को सब की साँझी निधि मानकर भोगो। जीवन से भागो नहीं, उसे उचित कर्म करके भोगो।"

नामकरण

इस उपनिषद् का प्रथम मन्त्र 'ईश' शब्द से आरम्भ होता है। उपनिषदों में से अनेक का नाम अपने पहले शब्द के कारण ही पड़ा है। 'ईशोपनिषद्' भी उनमें से एक है। 'ईश' शब्द का एक अर्थ 'ईश्वर' या 'परमात्मा' है, तो दूसरी ओर इसका ही अर्थ 'ऐश्वर्य' भी है। वास्तव में 'ऐश्वर्य' का अर्थ भी 'ईश्वर की सत्ता या उसका भाव' ही है। यह संसार उस ईश्वर की सत्ता या भाव से ही परिपूर्ण है : उसका ही सृजन किया हुआ है। इस उपनिषद् के माध्यम से मरणासन्न व्यक्ति की ओर इंगित करके जीवनेच्छुक व्यक्ति को यह बोध कराया गया है कि, "यह संसार ईश्वर और उसके ऐश्वर्य से भरा पड़ा है। इस ऐश्वर्य को अपना या निजी समझ कर मत भोगो। ऐसा भोग ही 'मोह' कहलाता है। उस ऐश्वर्य में सब का ही समान भाग है। अतः इसे ईश्वर द्वारा दिया हुआ य उसका ही मानकर त्यागपूर्वक भोगो। अर्थात्, उसे इस प्रकार भोगो

कि जिससे दूसरों को भी उनका उचित भाग मिल सके। औरों के लिए इस प्रकार त्याग-पूर्वक भोगने से ही तुम सच्चा जीवन जी सकते हो। तभी तुम अज्ञान और मोह के बन्धन से मुक्त होकर 'सम्भूति' या उन्नति की सच्ची राह पा सकोगे।" अगले मन्त्रों में ऐश्वर्य के इसी सत्य और असत्य रूप को समझा कर इसी जीवन में 'अमरता' या 'अमृत' पाने की राह सुझाई गई है।

दो मार्ग

इन मन्त्रों में शब्दों के तीन जोड़े इस प्रकार के आए हैं, जिन्हें समझे बिना इस उपनिषद् के वास्तविक सन्देश को समझा नहीं जा सकता। ये शब्द-युग्म हैं : **विद्या-अविद्या, सम्भूति-असम्भूति** एवं **मृत्यु-अमृत**। इन शब्दों का अर्थ विद्वज्जनों में प्रायः प्रचलित धारणाओं के अनुसार करके हम इनके वास्तविक महत्त्व को नहीं पहचान सकते। वेद में विद्या और अविद्या दोनों का ही ज्ञान अनिवार्य बताया गया है। सच तो यह है कि अमरता को भी तब तक नहीं पाया जा सकता, जब तक हम 'मृत्यु' के सही रूप को न पहचान लें। 'मृत्यु' के सही रूप को जानने के मार्ग को ही 'अविद्या' कहा गया है : 'वह मार्ग जिससे विनाश के पथ की ओर ले जाने वाले सभी विषयों का परिचय होता है, तथा जिसे पहचान कर ही हम उस ओर बढ़ने से रुक सकते हैं'। इसके विपरीत 'विद्या' वह माध्यम है, जो मृत्यु के भय से रहित हुए मनुष्य को 'अमरता' की सच्ची राह की पहचान कराता है। इसको जानकर ही व्यक्ति सभी वेदितव्य बातों को जान पाता है और जीवन की वास्तविकता से परिचित हो पाता है। इसीलिए 'विद्या' को 'अमरता को भोगने का माध्यम' कहा गया है। यही बात सम्भूति और असम्भूति के सम्बन्ध में भी है। 'सम्भूति' या उन्नति का मार्ग बिना 'असम्भूति' को पहचाने नहीं पाया जा सकता। 'असम्भूति' या विनाश की राह से परिचित होना भी

अत्यावश्यक है । तभी हम उन गड्ढों से बच सकेंगे, जिनमें गिरने के बाद मनुष्य अज्ञान और मोह का शिकार होकर सदा शोक और मृत्यु की छाया में पलता रहता है । अतः उन विषयों से परिचित होना बहुत आवश्यक है । मोह-शोक के इस मार्ग से परिचित कराने वाली विद्या को ही 'अविद्या' या 'भौतिक ज्ञानमार्ग' कहा गया है । इसे जानकर ही मनुष्य भौतिक उन्नति की वास्तविकता को पहचान पाता है और उससे बचकर वास्तविक उन्नति के मार्ग को खोजने की सच्ची चाह उसके मन में जागती है । वास्तविक उन्नति का रूप ही 'सम्भूति' कहलाता है । यही हमें आत्म और पर के भेद से परिचित कराकर सर्वत्र एक ही आत्मा की अनुभूति कराता है । इसके द्वारा बढ़कर ही हम अन्ततः ऐश्वर्य को वास्तविक रूप में पहचान और भोग पाते हैं । 'सम्भूति' का यह स्वरूप ही विद्या के द्वारा जाना जाता है और अमरता की ओर ले चलने का साधन होता है । इस प्रकार ये तीनों शब्द-युग्म वास्तव में हमें दो मार्गों का बोध कराते हैं : अविद्या-असम्भूति का युगल 'मृत्यु' के मार्ग से सम्बद्ध है, जबकि सम्भूति और विद्या का युगल 'अमृत' के मार्ग से सम्बद्ध है । अतः इन दोनों मार्गों से परिचित होने के लिए इन दोनों युगलों से भी परिचित होना जरूरी है ।

× × ×

यही है सार इस उपनिषद् का । इसे जानना ही मानव के लिए नितान्त अभीष्ट है ।

—: ० :—

॥ ओ३म् ॥

अथ ईशोपनिषद्

ईशा वास्यमिद ँ सर्वं यत् किं च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्य स्विद् धनम् ॥१॥

पदार्थ—(**जगत्याम्**) इस जगती में (**यत् किं च जगत्**) जो कुछ भी वस्तु या तत्त्व चलने-फिरने वाला या चेतना-सम्पन्न है, (**इदं सर्वम्**) यह सब (**ईशा**) सब के स्वामी उस 'पुरुष' या ब्रह्म द्वारा (**वास्यम्**) बसा जाने योग्य है । अर्थात्, समस्त जड़-जंगम जगत् में वह एक ही तत्त्व व्याप्त है । (**तेन**) इसीलिए उसके द्वारा (**त्यक्तेन**) दिए या छोड़े हुए से ही (**भुञ्जीथाः**) भोग करो। (**मा गृधः**) लोभ मत करो । (**धनं कस्य स्वित्**) धन होता ही किस का है ?

भावार्थ—इस जगती के भीतर जितनी भी चेतन और गतिमय सृष्टि है, उस सब में एक ही चेतना विद्यमान है । जब सब में एक ही चेतना विद्यमान है, तब धनादि को अकेले में भोगना उचित कैसे कहा जा सकता है ? अतः ऐसी स्थिति में हमें सांसारिक ऐश्वर्य का उपभोग यह सोचकर ही करना चाहिए कि यह सब उस स्वामी का ही दिया हुआ है । हम में से यह धन किसी का भी अपना नहीं है । जब हम ऐसा सोच कर धनैश्वर्यादि का उपभोग करेंगे, तब हमें उसके आने-जाने से कुछ भी दुःख न होगा ।

All the moving elements in the world are created and pervaded by the Lord of all. You enjoy only that (wealth). which has been left or given by Him. Do not become greedy. Whose is this wealth, after all ?

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः ।
एव त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।२।।

पदार्थ—(**इह**) इस लोक में या इस जीवन में (**कर्माणि कुर्वन् एव**) काम करता हुआ ही (**शतं समाः**) सौ वर्षों तक (**जिजीविषेत्**) जीने की कामना करे। (**एवम्**) इस प्रकार करने के अतिरिक्त (**त्वयि**) तुम्हारे लिए (**इतः अन्यथा न अस्ति**) कोई अन्य प्रकार इस जीवन को निभाने का नहीं है। (**नरे**) मनुष्य में (**कर्म**) उसके किए काम (**न लिप्यते**) लिप्त नहीं होते।

भावार्थ—मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी आयु को अधिक से अधिक लम्बी सीमा तक—सौ वर्ष से भी अधिक—बढ़ाने का प्रयास करे। ऐसा करने का सब से सरल उपाय यह है कि मनुष्य स्वयं को जीवनोपयोगी कर्म करने में व्याप्त रखे। परन्तु एक बात उसे सदा ध्यान रखनी चाहिए कि वह किसी भी कर्म के साथ इतनी आसक्ति न करे कि उसके सम्पन्न न होने पर वह शरीर या मन से स्वयं को दुःखी अनुभव करे। यदि इस प्रकार वह अनासक्त होकर कर्म करेगा, तब उसका जीवन बिना किसी कठिनाई के सरलतापूर्वक बीतता चला जाएगा। यह इसलिए कि तब उसके जीवन का हर पल किसी न किसी उपयोगी काम में ही बीतेगा। खाली रहने से जो अशान्ति या बेचैनी होती है, काम करने पर वैसी नहीं होगी। इसलिए आयु बढ़ाने का एक सरल उपाय यह है कि हम सदा स्वयं को उपयोगी कार्यों में लगाए रखें।

Wish always to live long, far more than a hundred years, while performing your duties well. There is no other way out from this world. One's acts do not involve his Self (if only he is truly dutiful).

असुर्य्या नाम ते लोकाऽअन्धेन तमसावृताः ।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥३॥

पदार्थ—(**ते लोकाः**) वे लोक (**असुर्य्याः नाम**) प्रकाशहीन हैं अथवा 'असुर्य' नाम से जाने जाते हैं, जो (**अन्धेन तमसा**) अत्यन्त घने अन्धकार से (**आवृताः**) घिरे रहते हैं। (**प्रेत्य**) मर कर या भाग कर (**तान्**) उन लोकों में (**ते अपि**) वे लोग ही (**गच्छन्ति**) जाते हैं, (**ये के च**) जो कोई भी (**जनाः**) मनुष्य (**आत्महनः**) स्वयं को अथवा अपने आत्मा को मार चुके होते हैं।

भावार्थ—अपनी आयु को लम्बा और सुखमय बनाने का उपाय इससे पहले मन्त्र में 'स्वयं को कर्म में लगाए रखना' बताया गया है। किन्तु बहुत से लोग निराशा में डूब कर, या अन्य कमियों के कारण, अपनी आत्मा को शक्तिहीन और निराश कर लेते हैं। आत्मशक्ति से रहित ऐसे लोग जिस जीवन को बिताते हैं, वह सर्वथा प्रकाश और आनन्द से रहित होता है। निराशा के गहन अन्धकार में डूबे इस जीवन को ही 'असुर्य्य लोक' कहा जाता है। अन्य लोग तो मरकर इस सुन्दर और काम्य जीवन से विदा होते हैं, किन्तु अपनी आत्मा को मार कर या निराश बनाकर रखने वाले लोग जीते जी ही मृत्यु से भी बुरा और अन्धकारपूर्ण जीवन बिताते हैं।

The worlds, known as 'Asuryyas', remain drenched in darkness. Those, who have killed their Self, go to them, even while living as well as after the death.

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् ।
तद् धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत् तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ।।४।।

पदार्थ—(**एकम्**) वह एक तत्त्व ऐसा है, जो (**अनेजत्**) न चलते होने पर भी (**मनसः जवीयः**) मन से अधिक वेगवान् है । (**अर्षत्**) आगे-आगे भागते या बहते हुए (**एनत्**) इसे (**देवाः**) देवता लोग (**पूर्वम्**) पहले प्रयत्न करने पर भी (**न आप्नुवन्**) प्राप्त नहीं कर सके । अर्थात्, इसकी गति का पार न पा सके । (**तत्**) वह तत्त्व (**तिष्ठत्**) एक ही जगह स्थित रहने पर भी (**धावतः अन्यान्**) दौड़ने वाले अन्य सब को (**अति एति**) पार करके आगे चला जाता है । (**तस्मिन्**) उसमें ही स्थित रहकर (**मातरिश्वा**) वायु (**अपः**) वर्षादिजल को (**दधाति**) प्रदान करता है । अथवा, आत्मा विविध कर्मों को धारण करता है ।

भावार्थ—यहां ब्रह्म की विशेषताओं का वर्णन किया जा रहा है । स्वयं न चलने पर भी वह मन की गति से अधिक तीव्र गति वाला है । जिस तरह बहते हुए जल के पीछे भागकर उसे पकड़ना असम्भव है, इसी प्रकार दिव्य शक्ति वाले जन भी इसे नहीं पकड़ सकते । क्योंकि वे जितना ही इसे पाने का यत्न करते हैं, यह उतना ही आगे बढ़ा हुआ प्रतीत होता है । यह स्वयं स्थिर रहता हुआ अन्य तेज दौड़ने वालों से भी आगे पहुँच जाता है । अर्थात्, हम कितना भी भागकर कहीं भी पहुँचे, यह वहां पहले से ही उपस्थित होता है । ऐसा इसकी सर्व-व्यापकता के कारण ही सम्भव होता है । इसकी व्यापकता के भीतर ही अन्तरिक्ष से जलवृष्टि भी होती है, या 'आत्मा' मनुष्यादि प्राणियों के रूप में अपने कर्म करता है ।

इस प्रकार इस मन्त्र में ब्रह्म की सर्वव्यापकता एवं सर्वत्र गति और उपस्थिति को सरलता से समझाया गया है ।

The Supreme Self is faster than mind, though without moving itself. The gods or divine powers can not reach it, because it always moves swiftly before them. Remaining stationary it wins over many a good runner. Within this very omnipresent Atman or Supreme Self, our own Self carries out its duties. Or, the winds carry the waters.

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५॥

पदार्थ—(तत्) वह तत्त्व (एजति) चलता भी है और (तत् न एजति) वह नहीं भी चलता । (तद् दूरे) वह दूर भी है (तद् उ अन्तिके) और वह पास भी है । (तत्) वही एक तत्त्व (**अस्य सर्वस्य**) इस सब दृश्यमान संसार के (अन्तः) अन्दर भी हैं, (तत् उ) और वही तत्त्व (**अस्य सर्वस्य**) इस सम्पूर्ण विद्यमान जगत् के (बाह्यतः) बाहर भी व्याप्त है ।

भावार्थ—इस ऋचा में परम चेतना की सर्वव्यापकता तथा एकतत्त्वता को बताया गया है । । जो परम चेतना या परमात्मा एक और अविच्छिन्न तत्त्व के रूप में सर्वत्र व्याप्त है, उसी के अन्दर ये स्थितियां पाई जा सकती हैं । हमारे निकट भी वही चेतना है, और दूर तक व्याप्त भी वही चेतना है । सर्वत्र व्याप्त होने से उसे चलने की आवश्यकता नहीं है । किन्तु हम जहां भी जाते हैं, या हमारा मन जहां तक जा सकता है, वहां हम उसे पहले से ही पहुँचा हुआ पाते हैं । इस समस्त दृश्य और अदृश्य संसार के भीतर भी वही तत्त्व व्याप्त है, तथा इसे चारों ओर से घेरने के कारण इसके बाहर भी वही तत्त्व विद्यमान है । इस प्रकार चेतना की अविच्छिन्नता, अखण्डता एवं सर्वव्यापकता के कारण एकमात्र वह तत्त्व ही 'आत्मा' या 'चेतन तत्त्व' कहा जा सकता है ।

This Self moves as well as does not move. This is 'nearer' as well as 'farther'. It is this Self, being omnipresent which pervades through and envelopes from all-around this creation.

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ।।६।।

पदार्थ—(यः तु) जो व्यक्ति (सर्वाणि भूतानि) सभी उत्पन्न प्राणियों को (आत्मन् एवं) अपनी आत्मा में ही (अनुपश्यति) अनुकूलता से देखता है, तथा (आत्मानम्) अपने को (सर्वभूतेषु) सब प्राणियों में उसी प्रकार व्याप्त देखता है; वह व्यक्ति (ततः) ऐसा करने पर (विचिकित्सति न) किसी भी प्रकार के सन्देह को प्राप्त नहीं होता ।

भावार्थ—जब व्यक्ति ऐसा अनुभव करने लगता है, जैसे सभी प्राणी स्वयं उसके जैसे हैं या उसके अपने ही भाग हैं तथा वह स्वयं भी उन सब में से एक है या उनका ही एक भागमात्र है, तब वह वास्तविक सत्य को जान लेता है । उसके लिए तब 'आत्मा' का सही रूप और उसकी व्यापकता का रहस्य पूर्णतया प्रकट हो जाता है । तब उसे अपने और दूसरे प्राणियों के बीच न तो किसी भेद और न ही किसी विद्वेष का अवकाश दिखाई देता है । इसीलिए तब अपने-पराए के विषय में उसके सारे सन्देह दूर जाते हैं और वह सर्वत्र एक ही आत्मा के फैलाव को अनुभव करने लगता है ।

आत्मा एक ही है । अपने-पराए का भेद अवास्तविक है । सब के अन्दर एक वही आत्मा है और सब प्राणी उसी एक परम आत्मा के अंश और अंग हैं ।

There remains nothing to repent or to doubt for him, who realises the fact that all the creatures lie within one great Self, as also that this great Self is itself present in all the creatures. (Because, 'Self' is one and indivisible inspite of apparent physical divisions.)

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोकऽएकत्वमनुपश्यतः ॥७॥

पदार्थ—(**यस्मिन्**) जिस क्षण में या जिस स्थिति में (**विजानतः**) सत्य का दर्शन कर लेने वाले की दृष्टि में (**सर्वाणि भूतानि**) सभी उत्पन्न प्राणी (**आत्मा एव अभूद्**) एक ही आत्मा के रूप में या उस व्यक्ति की अपनी ही आत्मा के भाग के रूप में बने दीखने लगते हैं, (**तत्र**) उस क्षण में या उस स्थिति में (**एकत्वम् अनुपश्यतः**) एकत्व को अनुभव करने वाले उस व्यक्ति के लिए (**कः मोहः कः शोकः**) न कोई मोह शेष रहता है, और न ही किसी प्रकार का शोक शेष रहता है।

भावार्थ—जिस क्षण भी कोई आत्मा अपने और अन्य प्राणिमात्र के बीच आत्मगत एकता को अनुभव कर लेता है, उसी क्षण से उसके लिए किसी प्रकार के शोक या मोह का अवकाश नहीं रहता। सत्य यह है कि किसी भी प्रकार के शोक और मोह का मूलभूत कारण प्राणिमात्र में आत्मा की भिन्नता को मानकर चलना है। सब में एक ही आत्मा का दर्शन करने वाला व्यक्ति किसी को भी विशेष रूप से अपना सम्बन्धी या विरोधी नहीं मानता। इसलिए किसी भी हानि या लाभ के प्रति उसे किसी भी प्रकार का मोह या शोक उत्पन्न नहीं होता।

After knowing the reality, when one realises that all the creatures are nothing but parts of one and the same great Self, he is left with nothing to repent or bemoan due to the false worldly attachments.

**स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधा-
च्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥८॥**

पदार्थ—जो व्यक्ति आत्मा की इस एकता को अनुभव कर लेता है, (**सः**) वह (**शुक्रम्**) पवित्र और उज्वल बन कर (**अकायम्**) काया के बंधन को स्वीकार न करता हुआ, (**अव्रणम्**) किसी भी प्रकार के शारीरिक व्रण आदि की चिन्ता न करता हुआ, (**अस्नाविरम्**) शारीरिक नस-नाड़ियों की जकड़ से मुक्त रह कर, (**शुद्धम्**) स्वच्छ और पवित्र बन कर, तथा (**अपापविद्धम्**) किसी भी पाप से जकड़ा न जाकर (**परि अगात्**) अपने आपको चारों ओर या सर्वत्र व्याप्त अनुभव करने लगता है। ऐसे व्यक्ति का आत्मा ही सच्चा (**कविः**) क्रान्तदर्शी हो जाता है। तब वह (**मनीषी**) अपने मन की कल्पना या इच्छा का नियामक हो जाता है, (**परिभूः**) स्वयं को सर्वत्र या चारों ओर व्याप्त अनुभव करने लगता है, और (**स्वयम्भूः**) स्वयं अपने वास्तविक रूप में स्थित हो जाता है, अथवा स्वयं को अजन्मा आत्मा के रूप में पहचानने लगता है। ऐसा होने पर वह आत्मा (**शाश्वतीभ्यः समाभ्यः**) अनन्त सदियों तक की गयी या होने वाली बातों या तथ्यों को (**याथातथ्यतः**) जिस प्रकार वे घटी थीं या घटने वाली हैं, उस प्रकार उन्हें यथार्थ रूप में (**वि अदधात्**) अलग-अलग रूप में प्रत्यक्ष करके पहचान लेता है।

भावार्थ—जब कोई आत्मा स्वयं को शारीरिक और भौतिक बन्धनों से ऊपर स्थित सत्य के रूप में जान लेता है, तब उसके लिए वे बन्धन बहुत तुच्छ रह जाते हैं। तब उसे इस तथ्य का वास्तविक बोध हो जाता है कि चारों ओर व्याप्त आत्मा और उसके स्वयं के बीच कोई द्वैत या विभेद नहीं है। आत्मा की सर्वत्र एकता का यह सच्चा अनुभव

ही 'अद्वैत' है। इस एकता का अनुभव होते ही वह आत्मा स्वयं अपने को ही सर्वत्र या चारों ओर व्याप्त ब्रह्म के रूप में अनुभव करने लगता है। ऐसा होने पर उसकी दृष्टि क्रान्त-दृष्टि हो जाती है; उसकी मनीषा अत्यन्त सूक्ष्म और व्यापिनी हो जाती है; तथा वह स्वयं को चारों ओर फैलता हुआ और किसी अन्य से जन्म न लेकर स्वयं अपने से ही जन्म लेता हुआ अनुभव करने लगता है। ऐसी अनुभूति होने पर, उस आत्मा के लिए काल के बन्धन भी टूट जाते हैं। तब अतीत, वर्तमान और भविष्य के सभी विभेद मिटाकर सारे सृष्टि-प्रवाह को वह एक ही धारा के रूप में देखने लगता है। काल के किसी भी अंश में घटित, घटमान या घटनीय कोई भी बात उसे प्रत्यक्ष की भांति स्पष्ट रूप से पता चल रही होती है। इस प्रकार वह स्वयं भी त्रिगुणातीत और कालातीत हो जाता है। आत्मा का 'विशाल से विशालतर होता हुआ' यह रूप ही ब्रह्म है: नित्य बढ़ता हुआ प्रतीत होने वाला रूप! और, इसे केवल वही पा सकता है, जो समस्त आत्मा को एक ही तत्त्व के रूप में पहचान और समझ लेता है।

He, who realises the aforesaid unity of the Self, feels himself as prevailing or expanding in all the directions, becoming illuminated, detatched from the physical feelings and careless about the wounds or urges of his nerves and intestines. He becomes, then, purified, free from all sins, trans-visioned and a real intellectual, with the realisation of his own Self as prevailing in all directions. He, then, feels himself as his own creator and knows all the facts in their ture form, for all times to come. (After knowing the ultimate reality, one is left with none of the attachments : his knowledge becoming realistic and timeless).

अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये ऽ अविद्यामुपासते ।
ततो भूयऽइव ते तमो य ऽ उ विद्याया ँ रताः ॥९॥

पदार्थ—(**ये**) जो लोग (**अविद्याम्**) न जानने योग्य बातों को (**उपासते**) जानने में लगे रहते हैं, वे तो (**अन्धं तमः**) घनान्धकार में (**प्रविशन्ति**) प्रवेश करते ही हैं। (**ततो भूय इव**) उनसे भी बढ़कर (**ते**) वे लोग (**तमः**) अन्धकार में प्रवेश करते हैं, (**ये उ**) जो लोग (**विद्यायाम्**) जानने योग्य बातों को जानने में ही (**रताः**) आसक्ति करके रम जाते हैं।

They enter the stark darkness, who remain engaged solely in knowing the non-knowledgeables. But they enter still greater darkness, who remain engaged in knowing only the knowledgeables.

अन्यदेवाहुर्विद्यया ऽ अन्यदाहुरविद्यया ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद् विचचक्षिरे ॥१०॥

पदार्थ—जानकार लोग (**विद्यया**) जानने योग्य बातों अर्थात् आत्मोन्नति-सम्बन्धी बातों को जानने का परिणाम (**अन्यत् एव**) कुछ और ही (**आहुः**) बताते हैं; जबकि (**अविद्यया**) न जानने योग्य बातों अथवा केवल सांसारिक उन्नति-सम्बन्धी बातों को जानने का परिणाम वे (**अन्यत् एव**) कुछ भिन्न ही (**आहुः**) बताते हैं। (**इति**) यही बात (**नः**) हम (**धीराणाम्**) कर्मशील और बुद्धिमान् लोगों के मुख से (**शुश्रुम**) सुनते आए हैं, (**ये**) जिन्होंने (**नः**) हमें (**तत्**) इस ऊपर कहे सत्य को (**विचचक्षिरे**) स्पष्ट रूप से समझाया है।

The wise and experienced ones have explained to us that the results of knowing 'Vidya' or knowledgeables

and 'Avidya' or non-knowledgeables are quite different. (Therefore, one must become acquainted with both of them.)

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभय ँ सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥११॥

पदार्थ—किन्तु (**यः**) जो व्यक्ति (**विद्यां च अविद्यां च**) जानने योग्य और न जानने योग्य (**तत् उभयम्**) दोनों ही प्रकार की बातों को वास्तविकता के साथ-साथ या एक ही साथ (**वेद**) जान लेता है, वह (**अविद्यया**) न जानने योग्य बातों की वास्तविकता को जानकर (**मृत्युम्**) मौत के भय को (**तीर्त्वा**) पार कर जाने के बाद (**विद्यया**) जानने योग्य बातों को जानकर (**अमृतम्**) मृत्यु से परे स्थित 'अमरता' की स्थिति को (**अश्नुते**) भोगता या अनुभव कर लेता है ।

भावार्थ—जो बातें हमारी आत्मिक उन्नति में सहायक नहीं होतीं, उन्हें 'अविद्या' कहा जाता है । जो बातें आत्मिक उन्नति के लिए उपयोगी हैं, उन्हें 'विद्या' कहते हैं । जीवन में आत्मिक उन्नति 'निः-श्रेयस्' कहलाती है । किन्तु केवल आत्मिक उन्नति ही जीवन के लिए पर्याप्त नहीं है । जीवन की अपनी भौतिक आवश्यकताएं भी हैं । भौतिक सम्पन्नता का ज्ञान भी अत्यावश्यक है । इसी 'ज्ञान' को सामान्यतः 'अविद्या' नाम दिया जाता है । इस प्रकार जीवन के भौतिक और आत्मिक दोनों पक्षों के पूरे ज्ञान से ही जीवन के वास्तविक रहस्य को सुलझाने में हम समर्थ हो सकते हैं । इसीलिए 'विद्या' और 'अविद्या' दोनों को जानना परम आवश्यक है । दोनों में से किसी एक का ही ज्ञान हमें अन्धकार में रखेगा । भौतिक जीवन की वास्तविकताओं को समझकर हम मृत्यु के भय से मुक्त हो सकते हैं । अर्थात्, तब यह ज्ञान हमें हो जाता है कि हर भौतिक वस्तु स्वभाव से ही विनश्वर है । अतः

उसके नाश की आशंका से डरने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। किन्तु, जब हम इस पक्ष के ज्ञान के साथ आत्मिक पक्ष के रहस्य को भी जान लेते हैं, तब हमारे सामने मृत्यु का भय तो रहता ही नहीं, बल्कि उससे भी परे स्थित 'परम आत्मा' की उपलब्धि का द्वार भी स्वतः ही खुल जाता है। तब साधक आत्मा स्वयं को मृत्यु से परे स्थित या 'अमर' अनुभव करने लगता है।

इस प्रकार 'आत्मा की अमरता' अनुभव करने के लिए जीवन के ग्राह्य और अग्राह्य दोनों पक्षों का ज्ञान होना परम आवश्यक है।

Only he can enjoy the ultimate immortality, who knows the secrets of knowledgeables and non-knowledgeables together. As he, then, crosses over the death by knowing the non-knowledgaebles as also becomes capable to enjoy the immortality by knowing the knowledgeables.

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ सम्भूत्याँ रताः ॥१२॥

पदार्थ—(ये) जो लोग (असम्भूतिम्) अवनति या विनाश के पथ का (उपासते) अवलम्बन लेते हैं, वे तो (अन्धन्तमः) घनान्धकार में (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं ही। (ततो भूयः इव) उनसे भी कहीं अधिक (तमः) अन्धकार में (ते) वे लोग प्रवेश करते हैं, (ये उ) जो कि (सम्भूत्याम्) उन्नति और ऐश्वर्य के विषय में (रताः) दत्तचित होकर आसक्ति कर लेते हैं।

They enter the darkness, who remain engaged in

seeking after the path of destruction. But they enter still greater darkness, who become solely dedicated towards the path of prosperity alone.

अन्यदेवाहुः सम्भवाद् अन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद् विचचक्षिरे ॥१३॥

पदार्थ—जानकार लोग (**सम्भवात्**) ऐश्वर्य और उन्नति के पथ के सेवन का परिणाम (**अन्यत् एव**) कुछ भिन्न ही (**आहुः**) बताते हैं, जब कि (**असम्भवात्**) अवनति या विनाश के पथ के सेवन का परिणाम (**अन्यत् एव**) उससे सर्वथा भिन्न (**आहुः**) बताते हैं। (**इति**) यही बात (**नः**) हम (**धीराणाम्**) बुद्धिमान् एवं कर्मशील लोगों से (**शुश्रुम**) सुनते आए हैं, (**ये**) जिन्होंने (**नः**) हमें (**तत्**) इस ऊपर कहे सत्य को (**विचचक्षिरे**) स्पष्ट रूप से समझाया है।

The wise and experienced ones have explained to us that the results of following the path of 'Sambhava' or possibilities and prosperity as well as that of 'Asambhava' or destruction and impossibilities are quite different ones. (Therefore, one must become acquainted with both of them).

संभूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभय ँ सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥१४॥

पदार्थ—इसीलिए (**तत् सम्भूतिं च विनाशं च**) उस ऐश्वर्य और विनाश (**उभयम्**) दोनों को ही (**यः**) जो व्यक्ति (**सह**) साथ-साथ ही (**वेद**) जान लेता है, वह (**विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा**) विनाश के पथ को

पहचान कर मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है, और (**सम्भूत्या**) ऐश्वर्य या भौतिक उन्नति के पथ के वास्तविक रहस्य को पहचानकर (**अमृतम्**) अमरता को (**अश्नुते**) भोगता या अनुभव करता है।

भावार्थ—सांसारिक रूप में जीवन की राह कभी भौतिक उन्नति या ऐश्वर्य की ओर मुड़ जाती है, तो कभी वह अवनति और विनाश के पथ की ओर मुड़ जाती है। सच तो यह है कि इन दोनों में से किसी भी एक पक्ष से मनुष्य का लगाव नहीं होना चाहिए। इनमें फँसकर रह जाने से, या इनमें से किसी भी एक पक्ष से आसक्ति हो जाने से, हम जीवन के अपने लक्ष्य में—मृत्यु के भय से मुक्त होने में—सफल नहीं हो पाते। ये दोनों हमें दुःख की गहराइयों में ले जाते हैं। मनुष्य को चाहिए कि इन दोनों ही पथों के वास्तविक लाभ और हानियों को सही रूप में पहचान ले। जो व्यक्ति इन दोनों मार्गों की वास्तविकता को साथ-साथ और सही रूप में जान लेता है, वह इन दोनों मार्गों के आकर्षण से मुक्त हो जाता है। इन दोनों का आकर्षण ही हमें भौतिक मृत्यु के भय से डराता रहता है। इनमें से 'विनाश' या ऐश्वर्य-विरोधी मार्ग 'मृत्यु' के भयावह रूप को हमारे सामने सदा सजग रखता है, जबकि 'ऐश्वर्य' और 'सम्भूति' का मार्ग हमें विविध प्रलोभनों और आकर्षणों में फँसा कर भौतिक मृत्यु की वास्तविकता से बेखबर रखता है। मृत्यु का भय या उसके पथ के प्रति आकर्षण—ये दोनों ही बातें—हमारे अज्ञान का परिणाम होती हैं। दोनों ही मार्ग एक दूसरे से बढ़ कर हमें अज्ञानान्धकार में फंसाए रखते हैं। इन दोनों की वास्तविकता को जानने वाला व्यक्ति न तो मौत से डरता है और न उसके प्रलोभन से आकृष्ट होता है। बल्कि, वह तो मौत के इस डर से मुक्त होकर आत्मा की सच्ची 'अमरता' या अमृतत्व' को पहचान लेता है। अतः अन्धकारपूर्ण होने पर भी इन दोनों पथों की वास्तविकता का ज्ञान मृत्यु के भय से मुक्ति चाहने वाले हर प्राणी को होना ही चाहिए।

Only the one, who knows the secrets of the path of destruction and prosperity together, can ultimately enjoy the immortality. And after crossing over the fear of death, because of his knowledge of the path of destruction, he tastes the immortality with the help of his knowledge of the path of prosperity.

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत् त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥१५॥

पदार्थ—(**सत्यस्य**) सत्य का (**मुखम्**) मुख (**हिरण्मयेन पात्रेण**) सुवर्णमय या लुभावने पात्र से (**अपिहितम्**) ढका हुआ है। (**पूषन्**) सब का पोषण करने वाले हे परमात्मन् ! (**त्वम्**) आप (**तत्**) उस आवरण या पर्दे को (**सत्यधर्माय**) सत्य को धारण करने और कराने वाली (**दृष्टये**) दृष्टि की प्राप्ति के लिए (**अपावृणु**) हटाकर दूर कर दो !

भावार्थ—सत्य सदा ही छिपा रहता है। इसे खोजने के लिए बाहरी आवरणों के भीतर झाँकना पड़ता है। सत्य पर पड़े ये आवरण स्वतः आकर्षक एवं असत्य होते हैं। यही बात हमारे जीवन के सम्बन्ध में भी सत्य है। 'आत्मा' और 'ब्रह्म' एक ही 'आत्मा' या 'आत्म-तत्त्व' के दो पहलू हैं। आत्मा के ऊपर मन और बुद्धि के सम्पर्क के कारण कुछ ऐसे आवरण पड़ जाते हैं कि वह अपने मूल विस्तीर्ण स्वरूप को भूल कर अपनी दृश्यमान सीमाओं में ही उलझ जाता है। जिस क्षण भी वह इन सीमाओं की अवास्तविकता एवं आकर्षण की असत्यता को समझ लेता है, उसी क्षण उसे 'आत्मा' और 'ब्रह्म' के बीच की सीमाएं टूटती नजर आती हैं। तब अपना 'आत्मा ही उसे नए-नए विस्तार से युक्त होता दिखाई देता है। तब आकाश की तरह वह उसे सर्वत्र व्याप्त अनुभव होता देखता है।

अत: सांसारिक आकर्षणों में न उलझ कर, हमें उनके पीछे स्थित दिव्यप्रकाशमय सत्य को खोजने के लिए सदा आतुर रहना चाहिए। जीवन के आकर्षणों को भोगते हुए भी हम सदा परम रहस्य को जानने का यत्न करें।

The face of the truth is always covered with gold-like attractive cover or lid. O Naurishing God, you uncover that face of truth by removing that lid, so that we may get that real vision, which sustains that truth.

In other words : the truth always remains hidden from our view, because of the false worldly attractions. Only by knowing the reality of those false attractions, we ean discover the truth, which is the real sustainer of our lives.

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह ।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि ।
यो ऽ सावसौ पुरुषः सो ऽ हमस्मि ।।१६।।

पदार्थ—(**पूषन्**) हे सब का पोषण करने वाले, (**एकर्षे**) सब के प्राणभूत एकमात्र सच्चे द्रष्टा अथवा सब को एक दृष्टि से देखने वाले, (**यम**) आचार्य के समान सब का नियमन या नियन्त्रण करने वाले, (**प्राजापत्य**) समस्त प्रजाओं अथवा उत्पन्न वस्तुओं के स्वामी और रक्षक (**सूर्य**) सब को प्रकाश और प्रेरणा देने वाले एवं स्वर्णिम तेज के मूल स्रोत, हे परमात्मन् ! (**रश्मीन्**) अपनी रसदात्री शक्तियों को (**व्यूह**) चारों ओर बिखेरो और (**तेजः**) अपने तेज को (**समूह**) हम सब प्राणियों में एकत्रित करदो। (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**कल्याणतमम्**) सर्वाधिक चाहने योग्य और सुन्दर (**रूपम्**) दर्शनीय रूप है, (**ते तत्**)

तुम्हारे उस रूप को (पश्यामि) मैं देख रहा हूँ। (यः) जो (असौ) वह (पुरुषः) पुरुष या परम आत्मा है, (सः असौ) वह ही (अहम्) मैं भी (अस्मि) हूँ। अर्थात्, उस परम आत्मा या परमात्मा में जो 'पुरुष' या 'आत्मा' है, वही आत्मा मुझ में भी है। (अथवा, जगत् के सब पदार्थों और प्राणियों में वह एक ही 'आत्मा' व्याप्त है। अतः सब प्राणिमात्र एक समान हैं।)

भावार्थ—वह परमपिता परमात्मा सब का प्रेरक, पोषक, नियामक प्रकाशक और रक्षक है। वह सब को एक दृष्टि से देखने वाला एवं एकमात्र सच्चा द्रष्टा है। वह ही अपनी पोषक शक्तियों को सब ओर बिखेरता है और सब में तेज और शक्ति को भरता है। हम उसके उसी कल्याणमय रूप को देखते हैं। उस परमात्मा और मनुष्य में स्थित जीवात्मा में 'आत्मा' नाम का तत्त्व एक ही और समान रूप से व्याप्त है। अन्तर यही है कि 'परमात्मा' के रूप में वह किसी प्रकार की सीमा से बँधा नहीं होता, जब कि 'जीवात्मा' के रूप में वह शरीरधारी प्राणियों की सीमाओं से घिरा रहता है। अथवा, प्रत्येक जीवमात्र में एक ही 'आत्मा' सर्वत्र समान रूप से विद्यमान है। आत्मा अपने इस सच्चे रूप को पहचान कर ही अपनी सीमाओं से ऊपर उठ सकता है और 'परमात्मा' की असीमता, सर्वव्यापकता और सर्वशक्तिमत्ता का आनन्द उठा सकता है। ऊपर के मन्त्रों में इस प्रकार के सच्चे ज्ञान को पाने के उपाय बताए गए हैं। उन्हें अपना कर ही 'आत्मा' अपने और 'परमात्मा' के बीच एकता एवं सच्चे सम्बन्ध को पहचान सकता है, तथा 'परमात्मा' की वास्तविक असीमता का आनन्द लाभ कर सकता है।

O God, you are the Naurisher, the real and only force, the controller, the illuminator and inspirer, the creator and the lord of all the beings. Scatter your naurishing agencies all around and concentrate your energy within

ourselves, so that we may become capable of seeing your most benevolent and resplendent form. The same 'Self' is present within all the universe and its beings. (Therefore, there is no difference between man and man.)

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्त ँ शरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर कृत ँ स्मर क्रतो स्मर कृत ँ
स्मर ॥१७॥

पदार्थ—(**वायुः**) सर्वत्र गति में समर्थ (**अनिलम्**) वायु की तरह सूक्ष्म एवं सर्वत्र व्याप्त आत्मा ही एकमात्र (**अमृतम्**) न मरने वाला या अमर तत्त्व है। (**अथ**) अन्यथा (**इदं शरीरम्**) यह शरी रतो (**भस्मान्तम्**) अन्त में भस्ममात्र ही अवशेष रह जाता है। इसलिए शरीर की इस अनित्यता एवं केवल आत्मा की नित्यता को पहचान कर (**क्रतो**) हे कर्मशील मनुष्य (**स्मर**) उस परम पिता भगवान् का स्मरण करो, तथा (**कृतं स्मर**) अपने किये हुए कर्मों और कर्तव्यों का स्मरण करो। केवल यही करना अभीष्ट है।

भावार्थ—हमारा शरीर पार्थिव है। इसे नित्य मानकर आचरण करना अनुचित है। मृत्यु के बाद जल कर यह शरीर राखमात्र बच जाता है। मिट्टी का पुतला मिट्टी में मिल जाता है। मृत्यु के बाद भी जो तत्त्व अमर होकर बचा रहता है, वह **आत्मा** है। यह आत्मा सर्वत्र गति में समर्थ एवं अमरणधर्मा है। यह बात जानने के बाद मनुष्यमात्र को यह उचित है कि वे अपने किये कर्मों और करने योग्य कर्त्तव्यों का स्मरण और विचार करें। ये कर्म और कर्त्तव्य ही आत्मा की उन्नति अथवा अवनति में सहायक होते हैं।

Only the Self or soul is immortal in this life. Other-

wise, this body is vulnerable and is reducible into ashes after its cremation. Therefore, one must remember the deeds performed by his own Self and the one which he aught to have performed.

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो
भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥१८॥

पदार्थ—हे (**अग्ने**) अग्निदेव ! (**अस्मान्**) हमें (**राये**) भौतिक सुख-समृद्धि के लिए (**सुपथा**) उत्तम मार्ग से (**नय**) ले चलो । (**देव**) हे देव ! आप (**विश्वानि वयुनानि**) हमारे समस्त कर्मों और आचरणों को (**विद्वान्**) जानते हो । (**जुहुराणम्**) वार-बार पुकारने वाले या बढ़ते हुए (**एनः**) पापों को (**अस्मत्**) हमारे से (**युयोधि**) आप पृथक् या दूर करो । (**ते**) आपके लिए हम (**भूयिष्ठाम्**) अत्यधिक (**नमः उक्तिम्**) नमस्कार की उक्ति को (**विधेम**) अर्पित करते हैं ।

भावार्थ—भौतिक सुख-समृद्धि की कामना मनुष्य को करनी ही चाहिए । किन्तु उसकी उपलब्धि के लिए सदा सत्पथ का ही अवलम्बन करना चाहिए । 'अग्नि' परमात्मा की प्रकाशदायिनी नेतृत्व शक्ति का ही नाम है । उससे यही प्रार्थना की गई है कि वह हमें भौतिक ऐश्वर्य की उपलब्धि के लिए केवल सत्पथ के द्वारा ही ले चले । प्रकाश, नेतृत्व और ज्ञान का देवता होने से 'अग्नि' हमारे सभी कर्मों का ज्ञान रखता है । अतः उससे यह प्रार्थना करनी उचित ही है कि हमें वह डसने वाले, या बढ़ते हुए, पाप कर्म से सदा दूर ही रखे ।

वैदिक जीवन में पाप कर्म से दूर रहने और सुपथ पर चलने की बात बार-बार दोहराई गई हैं।

O Agni, lead us towards riches through the righteous path. You know our all the deeds, O resplendent one. Detatch us from the rising tide of the sins. We pray thee intensively with our humblest oblations.

पूर्वभूमिका

उपनिषद् : महत्त्व

कभी जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् एवं दार्शनिक शॉपन हॉवर ने उपनिषदों को 'आत्मा की शान्ति का अपूर्व स्रोत' कहा था। उसने उन्हें 'विश्व की उच्चतम दार्शनिक कृतियां' भी कहा था। तब से आज तक पूर्व और पश्चिम के अनेकानेक विद्वानों ने उपनिषदों का गम्भीर अध्ययन करके उन्हें 'वेदोत्तरकाल की सब से महत्त्वपूर्ण रचना' स्वीकार किया है। यह कथन अनेक दृष्टियों से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। निस्सन्देह इनमें वेद की ऋचाओं में आई जिज्ञासाओं को ही स्वतन्त्र दृष्टि से उठाकर उन पर वेदानुकूल दृष्टि से विचार किया गया है। दोनों में अन्तर यह है कि जहां वैदिक ऋचाओं और मन्त्रों में मानवीय मन की उच्चतम भावनाओं को अभिव्यक्त किया गया है, वहां उपनिषदों में उन्हीं भावनाओं की दार्शनिक दृष्टि से छानबीन और विवेचना की गई है। पर यह छानबीन इतने सरल और सीधे ढंग से की गई है कि उनमें दर्शनों की सी गहराई, गम्भीरता, दुरूहता या कठिनाई कहीं भी आने नहीं पाई है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वक्ता या लेखक उस जिज्ञासाविशेष के सम्बन्ध में अपनी स्वानुभूति को ही यथानुभूतरूप में व्यक्त कर रहा हो। विषय के उपस्थापन का क्रम इतना सरल एवं मोहक है कि अधिक से अधिक अल्पधी व्यक्ति भी उसे समझने में कठिनाई अनुभव नहीं कर सकता। किसी भी बात को इस क्रम से उठाया जाता है कि कोई अनपढ़ व्यक्ति भी उस विषय को अपने स्तर पर समझने में समर्थ हो सके। किसी भी समस्या

का आरम्भ पहले भौतिक स्तर से करके फिर आध्यात्मिक दुरूहता तक उसे ले जाया जाता है। इसके साथ ही उपनिषदों की भाषा भी इतनी अधिक सरल है कि उसे अल्पज्ञतम व्यक्ति भी समझ सकता है।

उपनिषदों की रचना मूलतः प्रश्नोत्तर शैली में हुई है। ऐसा लगता है, जैसे गुरु-शिष्य के बीच हुए संवादों को ही 'उपनिषद्' के रूप में निबद्ध कर दिया गया हो। अधिकांश उपनिषदों में कथा-शैली को भी अपनाया गया है। परन्तु कथा-शैली के साथ भी संवाद-शैली या प्रश्नोत्तर-शैली का मिश्रण वहां हुआ है। कुछ भी हो, उपनिषदों का जन्म गुरु-शिष्य के बीच शंका-समाधान के क्षणों में ही हुआ होगा; क्योंकि स्वयं 'उपनिषद्' शब्द इस बात की ध्वनि देता है। 'उप' का अर्थ है 'समीप' और 'निषद्' का अर्थ है 'बैठना'। जिज्ञासु या शिष्य जब गुरु-चरणों में बैठकर अपनी शंकाओं का निवारण करवाता था, तब उन दोनों के बीच हुए वार्तालाप से ही इन उपनिषदों का मूलतः जन्म हुआ होगा। बाद में लेखकों या विचारकों ने स्वतन्त्ररूप में भी नए-नए वैदिक विषयों को लेकर उन पर चिन्तन आरम्भ कर दिया। परन्तु दोनों ही दशाओं में 'पास बैठने की इस समीपता' का एक अन्य मूल उद्देश्य अक्षुण्ण रहा : 'आत्मा और परमात्मा के परस्पर साक्षात्कार और समीप आजाने की भावना'। और, यह भावना सभी उपनिषदों में समान रूप से व्यक्त हुई है।

नामकरण

यह सामवेद की तलवकार शाखा से सम्बद्ध उपनिषद् है। इसलिए इसका एक नाम **'सामवेदीय तलवकारोपनिषद्'** है। परन्तु यह नाम उसका सामवेद की शाखा से सम्बन्ध बताने मात्र के लिए ही नहीं रखा गया है। इस नाम का एक बड़ा आधार यह भी है कि मूलतः इसका

पाठ सामवेद के **'तलवकार'** ब्राह्मण के नवम अध्याय से यथावत् लेलिया गया है। अतः इसे कोई मौलिक उपनिषद् नहीं कहा जा सकता। बहुत सी अन्य उपनिषदों के नाम भी इसी प्रकार उनसे सम्बद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर रखे गए हैं। 'छान्दोग्य' आदि के नाम इसी कोटि में आते हैं। परन्तु 'ईशोपनिषद्' के समान कुछ उपनिषदों के नाम उनमें प्रयुक्त प्रथम शब्द के आधार पर भी रखे गए हैं। हमारे अध्ययन की आधारभूत इस उपनिषद् का परिचायक नाम भी इसी आधार पर रखा गया है। यह नाम **'केनोपनिषद्'** है। इसका यही नाम सर्वप्रसिद्ध भी है। इसको यह नाम इसलिए दिया गया, क्यों कि इसके प्रथम मन्त्र या खण्ड का आरम्भ **'केन'** शब्द से ही होता है : **'केनेषितं पतति प्रेषितं मनः'** आदि। इसकी पृथक् पहचान के लिए इसका नाम इस शब्द के आधार पर ही **'केनोपनिषद्'** रख दिया गया।

आधार

इसके मन्त्रों और इसके विषय का अध्ययन करने पर पता चलता है कि मूलतः इसकी प्रेरणा अथर्ववेद के दशम काण्ड के द्वितीय सूक्त से ली गई है। इस सूक्त में कुल तेंतीस मन्त्र हैं। इनमें से पहले बीस मन्त्रों में मानव-शरीर, आध्यात्मिक विषयों, पंचतत्त्वादि, सृष्टि एवं उसके विविधांगों, आदि के मूल रचनाकार के विषय में प्रश्न किये गए हैं। इक्कीसवें मन्त्र में प्रथमतः इन प्रश्नों का उत्तर दिया गया है। इस मन्त्र में यह उत्तर वास्तव में बीसवें मन्त्र में की गई जिज्ञासा से ही सम्बद्ध है। किन्तु यह उत्तर वही है, जिसे इस प्रस्तुत 'केनोपनिषद्' में भी खोजा गया है। 'ब्रह्म ही इस सृष्टि और इसमें विद्यमान प्रत्येक भाव का कर्ता है', यह बात २३वें और २५वें मन्त्र में भी कही गई है। ये दोनों मन्त्र भी अपने से पूर्ववर्ती मन्त्रों के ही उत्तरमात्र हैं। तीसवें मन्त्र तक निरन्तर ही उस ब्रह्म के स्वरूप एवं कृतित्व का वर्णन है। इकतीसवें मन्त्र में शरीर एवं

ब्रह्म या पुरुष की साथ-साथ चर्चा हुई है। तब बत्तीसवें मन्त्र में उसी कोश में, जिसे इकतीसवें मन्त्र में 'हिरण्यय कोश' के नाम से कहा गया है, ब्रह्म के 'आत्मन्वत् यक्ष' के रूप में स्थित होने की चर्चा की गई है तथा यह कहा गया है कि उसकी वास्तविकता को ब्रह्मवेत्ता लोग ही जानते हैं' : **'तस्मिन् यद् यक्षम् आत्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः।' अन्तिम** मन्त्र इसी बात को पुनः दोहरा देता है।

संरचना

अब एक दृष्टि केनोपनिषद् की संरचना पर भी डालें। इसमें भी सर्वप्रथम इस शरीर और सृष्टि के निर्माता के विषय में ही प्रश्न उठाया गया है। इसका उत्तर चतुर्थ कारिका में 'ब्रह्म' के रूप में दिया गया है। 'ब्रह्म' के सम्बन्ध में जिज्ञासा उठाने पर उसे 'यक्ष' के ही रूप में प्रकट होकर देवों की परीक्षा लेता बताया गया है। और अन्त में केवल 'इन्द्र' या 'आत्मा' को ही यह रहस्य जानने में समर्थ बताया गया है कि 'ब्रह्म' ही यक्ष है। वास्तव में इस परीक्षा के माध्यम से यह सिद्ध किया गया है कि 'ब्रह्म' अन्य सभी दिव्य शक्तियों से बड़ा एवं उनका स्रष्टा है।

इस तरह दोनों की संरचना पर एक दृष्टि डालने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह उपनिषद् भी इस सूक्त की भांति अपनी जिज्ञासा 'केन' से आरम्भ करती है। सूक्तानुरूप ही यह भी 'ब्रह्म' को सर्वोच्च कहती है। साथ ही आधार-सूक्त की भांति यहां भी 'यक्ष' को ही 'ब्रह्म' कहा गया है।

अतः सामवेद की तलवकार शाखा से सम्बन्ध होकर भी यह उपनिषद् न केवल अपनी रचना के लिए, बल्कि अपने विषय और उसके निर्वाह के लिए भी, अथर्ववेद के दशम मण्डल के दूसरे सूक्त पर पूरी तरह आधारित है।

गठन :

इस उपनिषद् का गठन चार खंडों में बांटकर किया गया है । **प्रथम खण्ड** में सर्वप्रथम मानव शरीर एवं उसमें स्थित आध्यात्मिक शक्तियों के प्रदाता एवं प्रेरक के विषय में जिज्ञासा उठाई गई हैं । उसके उत्तर में जिस 'ब्रह्म, की चर्चा की गई है, वह सम्पूर्ण सृष्टि और तत्सम्बद्ध गतिविधियों का एकमात्र नियामक और सर्जक बताया है । परन्तु **द्वितीय खण्ड** में जिज्ञासु को इस बात के प्रति सजग किया गया गया है कि केवल यह जान लेने से ही काम नहीं चलता कि सृष्टि का रचियता और चालक कौन है, और उसका क्या महत्त्व है ? उसके स्वरूप को सही रूप में जानना कठिन है । परन्तु इसी जीवन में उस के वास्तविक रूप को जान लेना नितान्त आवश्यक है । अन्यथा मानव इस जीवन के समाप्त होने के बाद भी 'अमृत' या 'अमर' नहीं हो सकेगा । पर इसे पूरी तरह जान लेने के बाद मनुष्य अवश्य ही जन्म-मरण की चिन्ता से छूट कर अपने को अमर अनुभव कर सकता है और दैहिक मृत्यु के बाद 'अमर' बन भी सकता है । **तीसरे खण्ड** में इसके वास्तविक स्वरूप को समझने की महत्ता बताने के लिए ही देवताओं द्वारा उसे जानने के प्रयत्न की चर्चा की गई है । पहले उस ब्रह्म को 'यक्ष' के रूप में प्रस्तुत करके उसकी वास्तविकता के विषय में देवों को अनभिज्ञ बताया गया है । देवजन भी इस जिज्ञासा के लिए अपने में से सर्वप्रमुख और सर्व-शक्तिमान् माने जाने वाले तीन प्रतिनिधि देवों को इस जिज्ञासा का उत्तर पाने के लिए नियुक्त करते हैं । अन्य दिव्यशक्तियों की तुलना में अत्यधिक शक्तिमान् होते हुए भी **अग्नि** और **वायु** इसे पहचानने में समर्थ नहीं हो पाते । **इन्द्र** को भी इसे जानने के लिए अपके शक्ति–प्रदर्शन की अपेक्षा आत्मा और बुद्धि का सहारा लेना पड़ता है । वह अध्यात्मविद्यारूपी हैम-वती उमा नाम की स्त्री के पास जाकर इस प्रश्न को रखता है ।

चतुथ खण्ड में वह उसे बताती है कि, '**अग्नि और वायु जैसे अपने बल**

के अभिमानी देवताओं की शक्ति से भी अत्यधिक शक्ति वाला यह 'यक्ष' कोई अन्य नहीं 'ब्रह्म' ही है।' तब वह उसके आध्यात्मिक स्वरूप की चर्चा करती है।

इस प्रकार इन चार खण्डों में बड़ी नाटकीय शैली से अथर्ववेदीय सूक्त की ही बात को क्रमपूर्वक उठाया और समझाया गया है।

विषय और रूपक-शैली

इस प्रकार इस उपनिषद् में सृष्टि के परम रहस्य को एक ऐसे क्रम में समझाने का प्रयास किया गया है, जिससे कोई भी साधक उस रहस्य का सामान्य ज्ञान पाने के बाद उसकी विशिष्ट अनुभूति की ओर बढ़ सके। **प्रथम** और **दूसरे खण्ड** गुरु और शिष्य के बीच वार्तालाप के रूप में ही लिखे गए हैं। किन्तु **तीसरे** और **चौथे** खण्ड में पहले दो खण्डों में आए ज्ञान की वास्तविक उपलब्धि का रहस्य ही रूपक के माध्यम से बताया गया है। पहले खण्ड में अथर्वदीय सूक्त के विषय को ही पुनः संयोजित करके यह बताया गया है कि इस सम्पूर्ण सृष्टि का रचियता और नियन्ता वही है, जो हमारे व्यक्तिगत जीवन का भी विधाता और नियामक है। इसे ही 'ब्रह्म' कहा गया है। **दूसरे खण्ड** में इस 'ब्रह्म' सम्बन्धी ज्ञान की दुर्विज्ञेयता या कठिनता को बताकर उसे जानने के लिए सच्चा प्रयास करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। इसी खण्ड में यह भी संकेत दिया गया है कि केवल आत्मा ही इस ज्ञान को पाने और समझने में समर्थ हो सकता है। यदि आत्मा इस ज्ञान को पाले, तभी उसका अस्तित्व सत्य स्वीकार किया जासकता है। अन्यथा उसका अस्तित्व निरर्थक ही नहीं असत्य एवं विनाशकारी भी कहा जा सकता है। अतः उस आत्मा को केवल यह लक्ष्य जानने तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए कि इस जीवन और जगत् का नियमन और संचालन करने वाला तत्त्व कौन सा है?, बल्कि उसकी वास्तविकता को जीवन में अनुभव

करने का भी यत्न करना चाहिए। इसके लिए उसे 'ज्ञान' की सीमा से आगे बढ़कर 'अनुभव' की निस्सीमता को भी पाने का यत्न करना चाहिए। प्रथम दो खण्डों में समाहित गुरु-शिष्य का यह संवाद भी नाटकीय परिसंवाद की शैली में ही हुआ है। इसमें इस लक्ष्य को भली-भांति स्पष्ट किया गया है कि किसी भी लक्ष्य को जानलेने मात्र से ही उसका लाभ हम नहीं उठा सकते। उसका ज्ञान तो हमें केवल उससे परिचित मात्र कराता है। किसी भी लक्ष्य से अन्तरंग परिचय एवं जीवन में उसे ढालने के लिए उसकी अनुभूति होना भी आवश्यक है। यह अनुभूति स्वयं अपनी अशक्ति और सीमाओं को पहचाने विना नहीं हो सकती।

इस आत्म-ज्ञान के रहस्य को ही तृतीय खण्ड में बताया गया है। अग्नि और वायु क्रमशः भौतिक और दैविक शक्तियों के प्रतिनिधि माने गए हैं। वास्तव में हम उन्हें आत्मा की इन्द्रियाश्रित बाह्य और आन्तरिक शक्तियों के प्रतीक भी मान सकते हैं। होता यह है कि ब्रह्म को जानने का अभिमान करके आत्मा ब्रह्म की महिमा या महनीयता को अपनी ही महत्ता या महिमा मानने लगता है। वह स्वयं को ब्रह्म का अंश मानकर भी अपनी शक्ति पर गर्वित हो उठता है। इसलिए ब्रह्म की सत्ता को जानकर भी वह उसकी वास्तविकता पर विश्वास नहीं करता। यही बात इस तृतीय खण्ड में अग्नि और वायु की असफलता के मध्यम से बताई गई है। इसे नाटकीय रूप में प्रस्तुत करने के लिए अथर्ववेदीय सूक्त में कहे 'यक्ष' और 'ब्रह्म' को एक ही सत्ता के दो रूप बता कर 'यक्ष' को रहस्यमय व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिसके बाह्य आकार से उसके वास्तविक आकार को न जान पाने पर सभी भौतिक इन्द्रियां और उनकी दिव्य शक्तियां या उनके प्रतीक देव-जन, अपने में से सर्वप्रमुख प्रकाश और ज्ञान के प्रतीक अग्नि को, और उसके असफल होने पर शक्ति और गति के प्रतीक 'वायु' को, उसकी

वास्तविकता के परिज्ञान के लिए नियुक्त करते हैं। ये दोनों ही अपने-अपने लक्ष्य को भूलकर अपनी-अपनी शक्ति पर गर्वित हो जाते हैं, वैसे ही जैसे आत्मा अपनी इन्द्रियाश्रित भौतिक शक्तियों पर अहंकार करने लगता है। परन्तु 'यक्ष' के सम्मुख उनकी इन शक्तियों की असफलता स्पष्ट सिद्ध हो जाती है। तब अपनी शक्तियों की असफलता से हतोत्साह होकर ये इन्द्रियाश्रित शक्तियां, जिनके प्रतिनिधि इस रूपक में ये देव कहे गए हैं, स्वयं आत्मा से ही इस तथ्य को गहराई से पता लगाने का आग्रह करती हैं। इन्द्रियों की असफलता पर आत्मा ही इस ज्ञान में समर्थ हो हो सकता है। इस ज्ञान के लिए आत्मा बुद्धि के सहारे अध्यात्मविद्या की शरण में जाता है। यहाँ उसी अध्यात्मविद्या या अन्तर्मुखी बुद्धि की प्रतिनिधि है 'उमा'। यह अन्तर्मुखी बुद्धि अध्यात्म की सच्ची अधिकारिणी होने से इस विद्या द्वारा उपलब्ध ज्ञान को सहज ही पालेती है। इसी के माध्यम से ब्रह्म का सच्चा स्वरूप पता चलता है। तभी आत्मा ब्रह्म की सच्ची अनुभुति को ग्रहण कर सकता है। इस प्रकार 'उमा' के माध्यम से 'इन्द्र' यह पहचानने में समर्थ हो पाता है कि 'यक्ष' वास्तव में 'ब्रह्म' ही है। इसे ही हम यूं भी कह सकते हैं कि अध्यात्ममुखी होकर ही आत्मा जान पाता है कि ब्रह्म का बाह्य स्वरूप और वास्तविक स्वरूप वास्तव में एक जैसा ही है। सामान्यतः हम उसके बाह्य ज्ञान को पाकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। परन्तु जब तक आत्मा अपनी अनुभूति के द्वारा इस तथ्य को नहीं जान लेता कि 'ब्रह्म' ही इस जीवन और जगत् की अंतिम और चरम सच्चाई है, तब तक उसकी सच्ची मुक्ति नहीं हो सकती। उमा का यह उपदेश और इन्द्र का वास्तविक आत्म-बोध ही इस चतुर्थ खण्ड में वर्णित है।

महत्त्व

ज्ञान के इस अनुभवात्मक पहलू पर बल देने के कारण ही इस उपनिषद् का महत्त्व अत्यधिक हो जाता है। इसमें ब्रह्मज्ञान को बुद्धि का विषय न

बताकर आत्मा की अनुभूति का विषय बताया गया है। तभी आत्मा की ब्रह्म में लीनता आदि की स्थिति सम्भव हो सकती है। सम्भवतः अनुभूति की इस महत्ता के कारण ही इसका सम्बन्ध सामवेदीय उपासना-पद्धति से अधिक हो गया दीखता है। उपासना में भी बुद्धि की अपेक्षा आत्मा को ही प्रधानता दी जाती है। उपासना के द्वारा हम जिस ब्रह्म को पाना चाहते हैं उसकी ही अनुभूति और उपलब्धि का सरलतम उपाय इस उपनिषद् में वर्णित होने से इसे 'उपासना-पद्धति' का उद्घोषक भी कहा जा सकता है। आत्मा और ब्रह्म का सान्निध्य ही इस उपनिषद् में मुक्ति के लिए अनिवार्य बताया गया है। अतः सामवेदीय मन्त्रों पर बिना आधारित रहे भी यह उपनिषद् 'उप+आसना' के उसी लक्ष्य को पूरा करती है, जो सामवेदीय उपासना पद्धति का चरम लक्ष्य है। यही है इस उपनिषद् का वास्तविक महत्त्व।

ब्रह्म का स्वरूप

यहां यह जान लेना भी आवश्यक है कि इस उपनिषद् में वर्णित ब्रह्म का स्वरूप क्या है ? इस उपनिषद् के ही शब्दों में हम संक्षिप्ततम रूप में उस ब्रह्म को इस प्रकार कह सकते हैं : "जो इन मन, प्राण, वाणी, चक्षु और श्रोत्रादि का विनियोजक एवं उन्हें शक्ति प्रदान करने वाला है, वही 'ब्रह्म' है। उसे न चक्षु देख सकती है और न ही वह वाणी और मन के लिए गम्य है। वह ज्ञात और अज्ञात सभी वस्तुओं या ज्ञान से परे स्थित है। वाणी मन आदि उस तक पहुंच भी कैसे सकते हैं ? वह ही तो उन सबको शक्ति देने वाला है। इसीलिए इन सबके लिए वही एक साध्य एवं उपास्य है। इस पर भी यह सत्य है कि केवल इनके माध्यम से उसे जान कर ही हम उसे पूरी तरह नहीं जान और पा लेते। तथ्य को जान लेना और बात है, उसे अनुभव करना और ! इसलिए उस ब्रह्म की सच्ची अनुभूति पालेना ही चरम लक्ष्य है। और इस अनु-

भूति को पाने में इन्द्रियों और मन का अधिपति 'आत्मा' ही समर्थ हो पाता है। यही आत्मा जब तक अपनी ज्ञान और शक्ति पर गर्वित हो कर उस ब्रह्म को जानने का प्रयत्न करता है, तब तक यह उसकी वास्तविकता को नहीं जान पाता। किन्तु जब यह अपनी शक्तियों की सीमा को जानकर अपने ही अन्दर उस परम सत्य की अनुभूति करना चाहती है, तब इसकी ही सहायिका बुद्धि इसे उस परब्रह्म का साक्षात् कराती है। अग्नि और वायु इन्हीं भौतिक शक्तियों के प्रतीक हैं और इन्द्र आत्मा का। आत्मा उस परम ब्रह्म की उपासना के द्वारा सरलता से पा सकता है। परन्तु इस उपासना से पूर्व उसका ज्ञान और अनुभूति परम आवश्यक है।"

स्पष्ट है कि इस उपनिषद् में वर्णित ब्रह्म जनसामान्य द्वारा माने गए ईश्वर के रूप से बहुत भिन्न न होकर भी उससे बहुत अधिक व्यापक कल्पना का प्रतिनिधित्व करता है। शंकर के 'ब्रह्म' से यह भिन्न है और जीवन की सभी शक्तियों का परिचालक एवं प्रेरणा स्रोत है। इसीलिए यहां **तप**, **कर्म** और **दम** या इन्द्रिय संयम को 'प्रतिष्ठा' या आधार के रूप में, 'वेदों' को उसके अंग के रूप में, तथा **सत्य** को उसके निवासस्थान के रूप में बताया गया है।

भाषा और शैली

इसी प्रसंग में इस उपनिषद् की भाषा और शैली के सम्बन्ध में कुछ कह देना भी आवश्यक है। 'ईशोपनिषद्' की भांति इस उपनिषद् में केवल वेदमन्त्रों का ही संकलन नहीं है। इसलिए इसकी भाषा भी वेदों की भाषा से पर्याप्त परवर्ती और भिन्न है। **उपसर्ग** और **क्रिया** का जो अलगाव वेदमन्त्रों में देखने को मिलता है 'प्रेषितम्' आदि क्रिया-प्रयोगों में यहां वह नहीं मिलता। इसी प्रकार **निपातों** का पदपूरणार्थक तथा बह्वर्थक प्रयोग यहां पर्याप्त संकुचित हो गया दीखता है। नामशब्दों

एवं क्रियारूपों में भी पर्याप्त स्थिरता एवं एकरूपता आगई दीखती है। वास्तव में इसकी भाषा ब्राह्मणग्रन्थों की समकालीन है, क्योंकि इसकी रचना मूलतः पूर्वोक्त ब्राह्मणग्रन्थ के एक खण्ड के रूप में ही हुई थी।

इस उपनिषद् में गद्य और पद्य दोनों का ही मिश्रित प्रयोग हुआ है। पद्यात्मक खण्डों में छन्दों की विविधता द्रष्टव्य है। प्रथम खण्ड में ही पांच पद्यों में **'तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते'** के रूप में उत्तरार्ध को समस्यापूर्ति के लिए प्रयुक्त किया गया है। इन छन्दों में वैदिक छन्दों की भांति ही वर्णसंख्यादि में पर्याप्त विविधता पाई जाती है। कारण यह है कि ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों के रचयिताओं का मुख्य प्रयोजन ग्रन्थ या साहित्य को रचना नहीं था, बल्कि सुचिन्तित निष्कर्षों को सुधी विचारकों तक पहुँचाना था। इसलिए उन्होंने अपनी शैली में किन्हीं विशिष्ट साहित्यिक मानदण्डों को लाने का यत्न नहीं किया। विरोधी से प्रतीत होने वाले विरोधाभासी वक्तव्यों द्वारा अपने विषय को स्पष्ट करने की वैदिक शैली को यहां हम अत्यधिक चमत्कृत रूप में प्रयुक्त पाते हैं। द्वितीय खण्ड के दूसरे और तीसरे पद्यों को इसका अप्रतिम उदाहरण कहा जा सकता है। प्रथम खण्ड के पूर्वोक्त समस्या-पूर्ति वाले पद्य भी इसके ही उदाहरण कहे जा सकते हैं।

रूपक शैली में विषय को उपस्थित करने का प्रयोग अनेक उपनिषदों में हुआ है। वास्तव में वैदिक देवकल्पना ही रूपक-शैली में कीगई है। विविध भौतिक और दैवीय शक्तियों को विविध देवताओं के रूप में स्वीकार किया गया है। इस उपनिषद् के तृतीय खण्ड में आए **यक्ष, अग्नि वायु, इन्द्र** और **उमा** आदि सभी पात्र विविध सत्ताओं और शक्तियों के प्रतिनिधि बनाकर ही प्रस्तुत किये गए हैं। उनकी परस्पर शक्ति-अशक्ति परीक्षा एवं चरम सत्य को जानने की बात एक नाटकीय ढंग से समझाने के लिए ही ऐसा किया गया है।

इस प्रकार इस उपनिषद् का महत्त्व अनेक दृष्टियों से अत्यधिक है।

॥ ओ३म् ॥

अथ केनोपनिषद्

प्रार्थना

सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ॥

पदार्थ—वह ईश्वर या उसका ज्ञान (**नौ**) हमारी (**सह**) साथ-साथ ही (**अवतु**) रक्षा करे। वह (**नौ**) हमारा (**सह**) साथ-साथ ही (**भुनक्तु**) पालन करे। हम लोग भी (**वीर्यम्**) पराक्रम के कार्यों को (**सह**) साथ-साथ ही (**करवावहै**) करें। (**नौ**) हमारा (**अधीतम्**) पढ़ा हुआ या अध्ययन (**तेजस्वि**) तेज से युक्त (**अस्तु**) हो। हम लोग आपस में (**मा**) कभी नहीं (**विद्विषावहै**) विद्वेष करें।

व्याख्या—यहां प्रयुक्त पद 'नौ' है, जिसका वास्तविक अर्थ 'हम दोनों' हैं। सामान्यतः अध्ययन-अध्यापन से पूर्व इस मन्त्र को गुरु और शिष्य मिलकर एकसाथ बोला करते थे। उन दोनों की यह 'प्रार्थना' भी होती थी और 'संकल्प' भी। इस मन्त्र में गुरु-शिष्य दोनों मिलकर **ईश्वर** और **ज्ञान** की उपासना का संकल्प लेते हैं। वे दोनों **रक्षा, उपभोग** और **पराक्रम** की साथ-साथ और समान रूप से कामना करते हैं। वे अपने 'पठित पाठ' को भी तेज से युक्त अथवा सक्रिय और व्यावहारिक बनाने का संकल्प लेते हैं। और इस सब से बढ़कर वे प्रार्थना करते हैं कि गुरु-शिष्य के बीच कभी भी किसी भी प्रकार की द्वेष की भावना स्थान न ले। उन दोनों में किसी एक के भी मन में विद्वेष या बदले की भावना आने से अध्ययन-अध्यापन ठीक ढंग से नहीं हो सकता। न ही वह सफल हो पाता है।

May God protect us together. Let us also enjoy together. Let our energeic actions be performed together. May our readings be performed together. Let us not be hostile and hating towards each other.

आप्यायन्तु ममाङ्गानि, वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि । सर्वं ब्रह्मौपनिषदम् । माऽहं ब्रह्म निराकुर्याम् । मा मा ब्रह्म निराकरोत् । अनिराकरणमस्तु । अनिराकरणं मेऽस्तु । तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु । ते मयि सन्तु ।।

पदार्थ—(मम) मेरे (अङ्गानि) शारीरिक अङ्ग, (वाक्) वाणी, (प्राणः) प्राण, (चक्षुः) दृष्टि शक्ति अथवा आँखें, (श्रोत्रम्) श्रवण शक्ति अथवा कान, (बलम्) शक्ति (आप्यायन्तु) अत्यन्त पुष्ट एवं समृद्ध हों। (सर्वम्) चारों ओर व्याप्त यह सब कुछ (ब्रह्म औपनिषदम्) ब्रह्म के ही भीतर स्थित रहता है। अथवा, चारों ओर विद्यमान यह सब कुछ ब्रह्म में ही विद्यमान है, या ब्रह्म इस सब में विद्यमान है। यह यह बात सभी गुरु-शिष्य-चर्चाओं या उपनिषदों में स्पष्ट होती है।

(अहं) मैं (ब्रह्म) उस ब्रह्म को (मा निराकुर्याम्) कभी न भूलूं। या, कभी उसकी उपेक्षा न करूँ। (ब्रह्म) और वह ब्रह्म भी (मा) मुझे (मा निराकरोत्) कभी न भुलाए। वह ब्रह्म (अनिराकरणम्) उपेक्षा के भाव से रहित (अस्तु) हो। (में) और मुझ में भी (अनिराकरणम् अस्तु) यह उपेक्षा का भाव कभी न आए।

(तद्) इस प्रकार (आत्मनि) आत्मा की ओर (निरते) लग जाने पर, अर्थात् आत्मा को जान लेने पर, (उपनिषत्सु) उपनिषदों या गुरु-शिष्यों के वार्तालापों में (ये) जो-जो (धर्माः) हमें अपने कर्त्तव्य-पथ पर दृढ़ रखने वाले नियम हैं, (ते) वे सब (मयि) मुझ में (सन्तु) आजाएँ। अर्थात्, मैं उन सब नियमों का भली प्रकार पालन करूँ।

व्याख्या—इस मन्त्र में सर्वप्रथम शारीरिक-पुष्टि एवं सबलता की कामना की गई है। सबल शरीर ही सफल ज्ञान और सबल आत्मा को धारण कर सकता है। 'ब्रह्म' के अर्थ 'ईश्वर' 'वेद' और 'ज्ञान' होते है। सारा दृश्यमान संसार ईश्वर या ब्रह्म की गोद में ही समाया है। यह बात गुरु-शिष्य-संवादों के रूप में बनी सभी उपनिषदों में स्पष्ट की गई है। हम ऐसे सर्वव्यापी ब्रह्म को कभी न भूलें और वह भी हमें कभी अपनी कृपा-दृष्टि से ओझल न करे। ब्रह्म को सदा स्मरण रखने वाला आत्मा ही उपनिषदों में वर्णित सभी उचित धर्मों और नियमों से सम्पन्न हो सकता है।

टिप्पणी : यहां वर्णित 'ब्रह्म' का महत्त्व ही इस सारी उपनिषद् में बताया गया है।

This is an additional prayer, before entering into the actual dialogue. This also serves as a 'preface' to this 'Upanisad', the main theme of which is none else than 'Brahman' or 'Supreme Self.' It is a prayer for physical well-being and strength.

Let all my organs, speech, breathing, powers of seeing and hearing, physical strength, and all other senses be strong and growing. All the knowledge as well as that knowledgeable omnipresent Supreme Self have well been discussed in the Upanisads or 'Dialogues'. Let us never forget and neglect this fact. So that I, in my own trun, might not be forgotten by Him. Such an unforgetfulness will only be for my own benefit. After preparing my own soul in this way, I pray for having all the good points and duties elaborated in the Upanisads imbibed in myself, so that I might get the all-round prosperity.

प्रथमः खण्डः

ब्रह्म का स्वरूप

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः, केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः। केनषितां वाचमिमां वदन्ति, चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥१॥

पदार्थ—(**केन**) किस के द्वारा (**इषितम्**) भेजा हुआ या गतिमान् किया हुआ (**मनः**) यह हमारा मन (**`षितम्**) दूर तक गति करता हुआ (**पतति**) उड़ता है या चलता है। (**केन**) किस के द्वारा (**प्रयुक्तः**) नियोजित किया हुआ (**प्रथमः**) प्रकृष्टतम या सर्वश्रेष्ठ शक्तिवाला (**प्राणः**) प्राण (**एति**) अत्यन्त बल-सम्पन्न होकर कार्य करता है या चलता है। (**केन**) किस के द्वारा (**इषिताम्**) प्रेरित की हुई या भेजी हुई (**इमाम्**) इस (**वाचम्**) वाणी को (**वदन्ति**) लोग बोलते हैं। (**उ**) और (**कः**) कौन वह (**देवः**) दिव्यशक्तिसम्पन्न देव (**चक्षुः, श्रोत्रम्**) चक्षु और कान को (**युनक्ति**) नियुक्त करता है, या अपने-अपने काम में लगाता है।

At whose prompting this far-reaching mind flies afar ? Employed by whom the most powerful Prana carries on our life ? Who has gifted us with the speech, we pronounce ? And which Supreme Divine employs and activates our eyes and ears ?

श्रोत्रस्य श्रोत्रं, मनसो मनो यद्,
वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः।

चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः,
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ।।२।।

पदार्थ—(**यत्**) जो ब्रह्म या तत्त्व (**श्रोत्रस्य श्रोत्रम्**) कानों के लिए सुनने योग्य है, (**मनसः मनः**) मन के लिए मनन योग्य है, एवं (**वाचो ह वाचम्**) वाणी का भी मूल है, अथवा वाणी के द्वारा एकमात्र कथनीय है, (**स उ**) वही ब्रह्म या तत्त्व (**प्राणस्य प्राणः**) प्राणों को बल देने वाला है और (**चक्षुषः चक्षुः**) चक्षुओं को दृष्टि प्रदान करने वाला है। या, उनके लिए एकमात्र द्रष्टव्य है। (**धीराः**) कर्मशील और बुद्धिमान् लोग (**अस्मात् लोकात्**) इस लोक से, तथा ऊपर कहे शरीरस्थ श्रोत्र, चक्षु, प्राण, आदि से, (**अतिमुच्य**) छूट कर (**प्रेत्य**) मृत्यु के बाद इस लोक से दूर जाकर (**अमृताः**) अमर या मृत्यु की पहुंच से परे स्थित (**भवन्ति**) हो जाते हैं।

व्याख्या—जो बुद्धिमान् और कर्मशील लोग इस तथ्य को जान लेते हैं कि इन श्रोत्रादि इन्द्रियों को प्रदान करने वाला और इन सब के द्वारा एक मात्र उपास्य देव कौन है, वे लोग शरीर और उसकी इन्द्रियों की सीमा को पहचान लेते हैं और उन सब के देने वाले उस देवाधिदेव को ही एकमात्र जानने और पाने का यत्न करते हैं। उस परब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को जानने के बाद वे लोग मृत्यु के बन्धन से नहीं घबराते। ऐसे परम ज्ञानी लोग मृत्यु के बाद सच्ची अमरता को पा लेते हैं और जन्म-मरण के बन्धन में नहीं पड़ते।

Whosoever is the real force and ultimate goal of our sense of hearing, mind and speech, he himself is the real giver of, as well as attainable for, our eyes. After knowing whom the wise and the dutiful souls become immortal, by detatching themselves from the aforesaid physical and sensory powers at the time of their death.

न तत्र चक्षुर्गच्छति, न वाग् गच्छति, नो मनः ।
न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात् ।
अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि ।
इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ॥३॥

पदार्थ—(**तत्र**) उस ब्रह्म तक (**चक्षुः**) चक्षु या दृष्टि की सामर्थ्य (**न गच्छति**) नहीं पहुंच पाती। (**न**) न (**वाक्**) वाणी ही (**गच्छति**) उस तक पहुँचती है और (**न**) न ही (**मनः**) मन उस तक पहुँचता है। (**न**) न तो (**विद्मः**) हम उसे जान पाते हैं और (**न**) न ही हम (**विजानीमः**) वह विधि जानते हैं, (**यथो**) जिस से (**एतत्**) इस ब्रह्म-तत्त्व का (**अनुशिष्यात्**) व्याख्यान या उपदेश दिया जा सकता है। वास्तव में तो (**तत्**) वह तत्त्व (**विदितात्**) सभी ज्ञात पदार्थों और (**अविदितात्**) न जाने गए या अज्ञात पदार्थों से भी (**अधि अन्यत् एव**) भिन्न एवं पृथक् है। (**इति**) यह बात (**पूर्वेषां**) प्राचीन ऋषि-मुनियों या पूर्वजों से (**शुश्रुम**) हम सुनते आए हैं, (**ये**) जिन्होंने (**नः**) हमें (**तत्**) इस तत्त्व का (**विचचक्षिरे**) व्याख्यान या दर्शन उपलब्ध कराया है।

व्याख्या—उस ब्रह्म तत्त्व को आँख, वाणी, अथवा मन जैसे स्थूल माध्यमों से नहीं पाया जा सकता। यही नहीं, उनके स्वरूप को वाणी द्वारा भी पूरी तरह समझाया नहीं जा सकता। कारण यह है कि वह ज्ञात और अज्ञात सभी बातों से परे स्थित है और एकमात्र अनुभूति का ही विषय है।

That Element or Brahman is attainable neither through eyes and speech, nor through mind. Neither we know Him, nor we know about how to explain Him. He is totally different from known and unkown things. All this we have heard from our predecessors,

who have elaborately explained and illuminated Him for us.

यद्वाचाऽनभ्युदितं, येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि, नेदं यदिदमुपासते ।।४।।

पदार्थ—(यत्) जो ब्रह्म या तत्त्व (वाचा) वाणी से (अनभ्युदितम्) कहा नहीं जा सकता, बल्कि (येन) जिसके द्वारा (वाक्) वाणी ही (अभ्युद्यते) बोली जाने योग्य या अभिव्यक्तियोग्य होती है; (तत् एव) उस को ही (त्वम्) तुम (ब्रह्म) ब्रह्म या परमात्मा (विद्धि) जानो। (इदं न) इसे नहीं (यत्) जिस (इदम्) इसकी (उपासते) लोग उपासना करते हैं।

व्याख्या—वह सारभूत तत्त्व ब्रह्म ही है, जो वाणी को बोलने में समर्थ करता है; पर इस पर भी वाणी जिसका वर्णन करने में पूरी तरह समर्थ नहीं हो पाती। उसी ब्रह्म को जानना उचित है। उसे नहीं, जिसकी उपासना सामान्य जन करते हैं। अर्थात्, वह ब्रह्म उस ईश्वर-कल्पना से भिन्न एवं महान् है, जिसे सामान्य जन जानते और भजते हैं। उस परम तत्त्व को जानना ही हम सब को अभीष्ट होना चाहिए।

Which remains unexplained even by the speech; rather which engages or insrpires itself the speech in its expressive function, that very element is to be known as Brahman; not the one which is generally adored and prayed for by the common people.

यन्मनसा न मनुते, येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि, नेदं यदिदमुपासते ।।५।।

पदार्थ—(यत्) जो ब्रह्म (मनसा) मन के द्वारा (न मनुते) स्वयं मनन नहीं करता, किन्तु (मनः) मन को (येन) जिसके द्वारा (मतम्) मनन किया जाने वाला (आहुः) मानते हैं; (तदेव) उस को ही (त्वम्) तुम (ब्रह्म) ब्रह्म... पूर्ववत्।

व्याख्या—उस ब्रह्म को स्वयं चिन्तन करने के लिए किसी मन की आवश्यकता नहीं है। इस पर भी हमारे को चिन्तन की सामर्थ्य प्रदान करने वाला एकमात्र वही ब्रह्म है। उसी ब्रह्म को जानने का यत्न हमें करना चाहिए... इत्यादि।

Which does not require a mind for concentration or consideration, though it is itself the only activating power or source of human mind. Only that Brahman should be known... etc.

यच्चक्षुषा न पश्यति, येन चक्षूँषि पश्यति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि, नेदं यदिदमुपासते ॥६॥

पदार्थ—(**यत्**) जो तत्त्व (**चक्षुषा**) इन आंखों से (**न पश्यति**) नहीं देखता, बल्कि (**येन**) जिसके कारण (**चक्षूँषि**) ये भौतिक नेत्र (**पश्यति**) देखने में समर्थ होते हैं; (**तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि**) उसको ही तुम ब्रह्म जानो,... इत्यादि।

व्याख्या—इन भौतिक आंखों से वह ब्रह्म स्वयं नहीं देखता, यद्यपि इन भौतिक आंखों को देखने की सामर्थ्य उस ब्रह्म से ही मिलती है। उस ब्रह्म को ही ... इत्यादि।

Who does not need the eyes to see the universal functioning, though He himself gives them the power to see. Only that Brahman... etc.

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति, येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥७॥

पदार्थ—(**श्रोत्रेण**) इन कानों के द्वारा (**यत्**) जो ब्रह्म (**न शृणोति**) नहीं सुनता, बल्कि (**इदं श्रोत्रम्**) यह कान (**येन**) जिसके कारण (**श्रुतम्**) सुनने में समर्थ होता है, (**तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि**) उसको ही तुम ब्रह्म जानो... इत्यादि।

व्याख्या—जो ब्रह्म इन भौतिक कानों से नहीं सुनता, यद्यपि इन्हें सुनने की सामर्थ्य वह स्वयं ही देता है, उसे ही हमें ब्रह्म जानना चाहिए ... इत्यादि ।

Who does not require any ears for listenting, yet who himself provides these physical ears with the power of hearing. Only that Brahman... etc.

यत् प्राणेन न प्राणिति, येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि, नेदं यदिदमुपासते ॥८॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**प्राणेन**) इन सामान्य प्राणों के द्वारा (**न प्राणिति**) सांस नहीं लेता, या इनके कारण जीवित नहीं रहता, किन्तु (**येन**) जिसके द्वारा (**प्राणः**) यह प्राण (**प्रणीयते**) अपने कार्य में समर्थ होता है, (**तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि**) उस तत्त्व को ही तुम ब्रह्म जानो, (**इदं न**) इसे नहीं, (**यत् उपासते**) जिसकी उपासना सामान्य लोग करते हैं ।

Who does not breathe through these respiratory processes himself, but who is the source of activisation of these very forces. Only that Brahman should be known by you, not the one who is adored and prayed for by the common people.

द्वितीयः खण्डः

ब्रह्म की दुर्विज्ञेयता

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम् । यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम् ॥१॥

पदार्थ—गुरु शिष्य से कहता है, "हे शिष्य ! (**यदि मन्यसे**) यदि तुम समझते हो कि (**सुवेद इति**) मैं भली प्रकार से जानता हूं, तब (**त्वम्**) तुम (**नूनम् एव**) निश्चय से (**अपि**) ही (**ब्रह्मणः रूपम्**) ब्रह्म की वास्तविकता को या उसके स्वरूप को (**दभ्रम्**) कठिनता से या बहुत कम ही (**वेत्थ**) जानते हो । (**अथ**) किन्तु (**यत्**) यदि (**त्वम्**) तुम (**अस्य**) इसके उस रूप को जानते हो, (**अस्य यत्**) जो इसका रूप (**देवेषु**) दिव्य-शक्ति-सम्पन्न पदार्थों या दिव्य शक्तियों में (**मीमांस्यम्**) विचारणीय या खोजने योग्य है, (**एव**) तब ही (**मन्ये**) मैं समझता हूँ कि (**ते विदितम्**) तुम्हें उसका रहस्य विदित या सुज्ञात है ।

व्याख्या—इस श्लोक में इस तथ्य को समझाया गया है कि ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप को समझना सरल नहीं है । उसे सही रूप में समझने के लिए सभी दिव्यशक्तियों में प्रकट उसके स्वरूप को समझना अत्यावश्यक है । जो सभी दिव्यशक्तियों में उसी ब्रह्म के प्रकाश को आभासित पाता है, वही उसे सही रूप में जान पाता है ।

The teacher warns the student, "If you think that you know the ultimate reality, then certainly you know only a bit of the reality about that Brahman. In my

opinion, you know him only when you know this fact that it is only the Brahman, which should really be recognised and considered as the real illuminating force for all the other divine forces."

नाहं मन्ये सुवेदेति, नो न वेदेति वेद च ।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ॥२॥

पदार्थ—यहाँ शिष्य उत्तर देता है, "हे गुरुवर! (**अहं न मन्ये**) मैं ऐसा नहीं समझता कि (**सुवेद**) मैं उसे अच्छी प्रकार जानता हूं । (**नो च**) न ही (**वेद**) मैं ऐसा ही जानता हूं कि (**न वेद इति**) मैं उसे सर्वथा नहीं जानता। (**नः**) हम में से (**यः**) जो भी (**तद्वेद**) उस तत्त्व को जानता है, (**तत्**) वह उस तत्त्व को (**नो वेद**) वास्तव में नहीं जानता । और, जो (**इति**) यह मानता है कि (**न वेद**) मैं उसे बिल्कुल ही नहीं जानता, वह ही (**वेद च**) वास्तव में उसे जानता है ।

व्याख्या—शिष्य यहाँ अपनी दुविधामय स्थिति को बताता है । वह कहता है, "हे गुरुवर, मैं सब कुछ भली प्रकार जानने का दावा नहीं करता। पर 'मैं सर्वथा ही अज्ञानी हूं,' यह भी मैं नहीं कह सकता । हम में से जो भी यह मानता है कि वह उस ब्रह्म को जानता है, वही उस की वास्तविकता को नहीं जानता । किन्तु जो यह समझता है कि 'मैं उसे अब तक नहीं जान पाया', वही वास्तव में उस ब्रह्म को किसी सीमा तक जान पाया है ।

The pupil replies, "Neither I think that I know the reality of everything very well, nor I think that I know nothing about that reality. Those amongst us, who claim that they know that reality, know nothing about that Brahman. While those, who declare their own total ignorance about that reality, really know something about the ultimate truth".

यस्यामतं तस्य मतं, मतं यस्य न वेद सः ।
अविज्ञातं विजानतां, विज्ञातमविजानताम् ॥३॥

पदार्थ—(**यस्य**) जिसके लिए भी वह ब्रह्म (**अमतम्**) अजाना ही बना रहता है, (**तस्य**) उसके द्वारा ही वास्तव में (**मतम्**) वह कुछ-कुछ समझ लिया जाता है । किन्तु (**यस्य**) जिसे वह (**मतम्**) जाना हुआ प्रतीत होता है, (**सः**) वह (**न वेद**) उस के विषय में वास्तविकता को नहीं जानता । (**विजानताम्**) विशिष्ट रूप से सब कुछ जानने का दावा करने वालों के लिए वह तत्त्व (**अविज्ञातम्**) अनजाना ही बना रहता है, जबकि (**अविजानताम्**) अपने ज्ञान का दावा न करने वालों के लिए वह (**विज्ञातम्**) जाने हुए या ज्ञात तत्त्व के रूप में स्थित रहता है ।

व्याख्या—जो ऐसा मान बैठते हैं कि उन्होंने सत्य को जान लिया है, वे सत्य की अनेक गहराइयों को जान नहीं पाते । किन्तु जो अपने ज्ञान की सीमा को पहचानते हैं, वे ही किसी सीमा तक वास्तविकता को जानने में समर्थ होपाते हैं ।

Only those, who think that they know nothing about the reality, know the ultimate reality. But those who think that they know the ultimate reality, actually know nothing. The ultimate truth remains unkown to those, who think themselves as all-knowing persons, while the same is known to them, who remain quite ignorant about their own knowledge regarding that ultimate reality.

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते ।
आत्मना विन्दते वीर्यम्, विद्यया विन्दतेऽमृतम् ॥४॥

पदार्थ—उस ब्रह्म को (**प्रतिबोधविदितम्**) आत्मा के प्रबोधन या

जागरण के द्वारा जाना जाने योग्य (**मतम्**) माना गया है। तभी आत्मा (**अमृतत्वम्**) उस अमरत्व को (**विन्दते**) प्राप्त करता है। वास्तव में (**आत्मना**) अपने आत्मा को पहचान कर या उसके द्वारा ही मनुष्य (**वीर्यम्**) पराक्रम या शक्ति को (**विन्दते**) प्राप्त करता है, जबकि (**विद्यया**) जानने योग्य बातों को जानकर या आत्मज्ञान को पाकर वह (**अमृतम्**) उस अमरत्व को या अमरता की स्थिति को (**विन्दते**) पाने में समर्थ होता है।

व्याख्या—उस अमरता की स्थिति को या अमर ब्रह्मतत्त्व को पाने का एकमात्र उपाय है, ज्ञान के द्वारा आत्मा का जागरण। सब से पहले आत्मा अपने रूप को पहचानता है, तभी वह ब्रह्मरूपी अमर तत्त्व को पाने में समर्थ हो पाता है।

That immortal state or element is attained only after the awakening of the Self. By knowing the Self, one gets the metaphysical strength, while through the knowledge of the knowledgeables the soul or Self gets the immortal state, or that ultimate element.

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति,
न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥५॥

पदार्थ—(**इह**) इस संसार में आकर (**चेत्**) यदि उस अमरता की स्थिति या उस ब्रह्मतत्त्व को (**अवेदीत्**) जान लिया, (**अथ**) तब तो (**सत्यम् अस्ति**) जीवन पाना सच्चा या सफल रहता है, किन्तु (**चेत्**) यदि (**इह**) इस संसार में आकर मनुष्य (**न अवेदीत्**) उस अमरतत्त्व को नहीं जान पाता, तब (**महती**) अत्यधिक या अत्यन्त विशाल (**विनष्टिः**)

विनाश होता है। (धीराः) बुद्धिमान् और कर्मशील लोग उस अमर तत्त्व को (भूतषु-भूतेषु) जन-जन में या प्राणिमात्र में (विचिन्त्य) खोजकर या विचारकर (अस्मात्) इस (लोकात्) संसार से (प्रेत्य) मर कर जाने के बाद (अमृताः भवन्ति) अमर हो जाते हैं, या अमरता की स्थिति को पा लेते हैं।

व्याख्या—अपने जीवन में जो व्यक्ति आत्मा और ब्रह्म की वास्तविकता को जान लेता है, उसका ही जीवन सफल कहा जा सकता है। किन्तु जो उन्हें नहीं जान पाता, उसका जीवन व्यर्थ ही विनष्ट होता है।

इस परम सत्य को, अथवा आत्मा और ब्रह्म की वास्तविकता को, विद्वान् लोग तभी जान पाते हैं, जब वे प्रत्येक प्राणिमात्र और पदार्थ-मात्र में उस एक ही तत्त्व या सत्य को खोजने का प्रयास करते हैं। उसे सर्वत्र व्याप्त पाकर वे स्वयं भी मृत्यु के भय से मुक्त हो कर अमरता की स्थिति को पा लेते हैं।

"If one has come to know the ultimate reality during his own life-time, then his life can be said to be really successful. But if one cannot know the ultimate reality during his own life-time, then that brings the greatest deluge. The wise and the dutiful people know that ultimate reality, by seeking it through all the beings. Only then they become immortal, after departing afar from this world".

तृतीयः खण्डः

देवों की परीक्षा

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये। तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त। त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयो। अस्माकमेवायं महिमेति ॥१॥

पदार्थ—(**ब्रह्म**) वह ब्रह्म (ह) निश्चय ही (**देवेभ्यः**) सभी दिव्य-शक्तियों से बढ़कर (**विजिग्ये**) आगे निकल गया। (**तस्य**) उस (**ब्रह्मणः**) ब्रह्म की (**विजये**) विजय में (**देवाः**) देवों ने (**अमहीयन्त**) अपनी ही यशोवृद्धि या महत्त्व को बढ़ता पाया। (**ते**) उन्होंने (**ऐक्षन्त**) विचार कर निश्चय किया कि (**अयम्**) यह (**विजयः**) विजय या जीत (**अस्माकम् एव**) हमारी अपनी ही है, और (**अयं महिमा**) यह महत्त्व भी (**अस्माकम् एव**) हमारा ही है।

व्याख्या—ब्रह्म सभी दिव्यशक्तियों से श्रेष्ठ है। किन्तु इससे दिव्य-शक्तियों का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। अन्ततः वे उस ब्रह्म की ही शक्तियां हैं। उसके बड़प्पन में ही उनका अपना भी महत्त्व है।

The Brahman reached far ahead of all the divine powers or elements. In this victory of his, these divine powers or elements felt themselves glorified. They considered it as their own victory and as their own glory.

तद्धैषां विजज्ञौ । तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव । तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ॥२॥

पदार्थ—(तम्) वह ब्रह्म (एषाम्) इन देवों या दिव्यशक्तियों के (विजज्ञौ) विचार या भाव को पहचान गया । (तेभ्यः) उनके लिए, अर्थात् उनके ज्ञान की परीक्षा के लिए, (प्रादुर्बभूव) वह प्रत्यक्ष रूप में यक्ष का रूप धारण करके प्रकट हुआ । (तत्) तब (न व्यजानन्त) वे देव नहीं जान पाए कि (इदम्) यह (यक्षम्) यजनीय या पूजायोग्य यक्ष (किम् इति) क्या और कौन है ?

That Brahman came to know this. For testing them, He appeared physically in the form of a 'Yaksa'. They could not make out as to what and who was that 'Yaksa?'

ते अग्निमब्रुवन्, 'जातवेदः ! एतद्विजानीहि किमिदं यक्षम् इति' । 'तथेति' ॥३॥

पदार्थ—(ते) वे (अग्निम्) अग्नि से (अब्रुवन्) बोले, "(जातवेदः) सभी उत्पन्न पदार्थों को जानने वाले एवं उनमें विद्यमान, हे जातवेदः अग्नि ! आप (एतत्) इस तथ्य को (विजानीहि) पता लगाइए कि (इदम्) यह (यक्षम्) पूजनीय यक्ष (किम् इति) किस स्वरूप का है?' तब वह अग्नि बोला, '(तथा इति) अच्छा मैं ऐसा ही करूँगा' ।

They said to Agni, "O all-illunimating and all-knowing Agni, you enquire for us this fact that what is this Yaksa ?' He replied, "So be it".

तदभ्यद्रवत् । तमभ्यवदत्-'कोऽसि इति' । 'अग्निर्वा ऽ

हमस्मि' इति, अब्रवीत् 'जातवेदा वा ऽ हमस्मि' इति ॥४॥

पदार्थ—वह अग्नि (तत् अभि) उस यक्ष की ओर (अद्रवत्) दौड़ कर पहुंचा। यक्ष (तम् अभि) उसको अभिमुख करके या उसको पुकार कर (इति अवदत्) इस प्रकार बोला, "(कः असि इति) तुम कौन हो ?" "(अहम्) मैं (अग्निः वा अस्मि) अग्नि हूँ, और (जातवेदाः वा अस्मि) जातवेदा भी कहा जाता हूं', (इति अब्रवीत्) वह इस प्रकार बोला।

Agni stormed towards that Yaksa. He spoke to Agni and said, 'who are you ?" Agni replied, "I am known as 'Agni or Jatavedah ?'

'तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यम्' इति। 'अपीदं सर्वं दहेयं, यदिदं पृथिव्याम्' इति ॥५॥

पदार्थ—तब यक्ष ने अग्नि से पूछा, "(तस्मिन् त्वयि) ऐसे तुम अग्नि में (किम् वीर्यम्) कैसा या कौनसा पराक्रम है ? अर्थात्, तुम्हारी शक्ति कितनी और क्या है ?" इसके उत्तर में अग्नि बोला, "(पृथिव्याम्) इस पृथ्वी पर (यत् इदम्) यह जो कुछ भी वर्त्तमान है, (इदं सर्वम्) इस सब को (अपि) ही (दहेयम्) मैं जला सकता हूँ।"

At this Yaksa asked Agni, "Which powers do you prosses ?" Agni replied, "I can burn all this, what-so-ever is present on this earth."

तस्मै तृणं निदधौ। 'एतद्दहेति'। तदुपप्रेयाय सर्वजवेन।

तन्न शशाक दग्धुम् । स तत एव निववृते । नैतदशकत् विज्ञातुं, यदेतद् यक्षमिति ॥६॥

पदार्थ—उस यक्ष ने (तस्मै) अग्नि के लिए, अर्थात् उसकी शक्ति-परीक्षा के लिए, (तृणम्) एक तिनके को (निदधौ) रख दिया और बोला, "(एतत्) इसे (दह इति) जलाओ"। वह अग्नि भी (तत् उप) उस तिनके की ओर (सर्वजवेन) पूरे वेग के साथ (प्रेयाय) गया या पहुँचा। किन्तु (तत्) उसे (दग्धुम्) जलाने में (न शशाक) समर्थ नहीं हो पाया। (ततः) तब उस तिनके से (सः एव) वह अग्नि ही (निववृते) पराजित होकर निवृत्त हुआ या लौट आया। तथा वह (एतत्) इस तथ्य को (विज्ञातुम्) जानने में (न अशकत्) समर्थ नहीं हो पाया (यत्) कि किस स्वरूप का है (एतत्) यह (यक्षम् इति) यक्ष।

That Yaksa put forth a straw for testing the powers of Agni and spoke to him, "Burn it now". Agni went with all the speed towards that straw, but could not burn it. He, then, refrained from that attempt. In this way, he could not come to know the reality about that Yaksa.

अथ वायुमुपब्रुवन्-'वायवेतद् विजानीहि, किमेतद्यक्षमिति'। 'तथेति' ॥७॥

पदार्थ—(अथ) तब (वायुम्) वायु के (उप) समीप जाकर (अब्रुवन्) वे बोले, (वायो) "हे वायु, आप (एतत्) इस सत्य को (विजानीहि) पता लगाइए, कि (एतद्) यह (यक्षम्) यक्ष (किम् इति) क्या है ?" अर्थात्, "इसकी वास्तविकता का पता लगाइये।" वायु बोला, "(तथेति) ऐसा ही होगा।"

Then those divine powers went to Vayu and said, "O Vayu please seek out the truth about this Yaksa. What is it ?" He answered, "I shall do accordingly."

तदभ्यद्रवत् । तमभ्यवदत्-"कोऽसीति" । "वायुर्वाऽहम-स्मीति" अब्रवीत्, "मातरिश्वा वाऽहमस्मीति" ॥८॥

पदार्थ—तब वह वायु भी (तत् अभि) उस यक्ष की तरफ (अद्र-वत्) दौड़ कर गया । यक्ष ने उससे पूछा, "(कः असि इति) तुम कौन हो" ? वायु ने (इति अब्रवीत्) यह उत्तर दिया, "(वायुः वा अहम् अस्मि) मैं 'वायु' भी कहलाता हूँ, (मातरिश्वा वा अहम् अस्मि) और 'मातरिश्वा' भी कहलाता हूँ" ।

टिप्पणी—वायु का अर्थ 'गतिशील' एवं 'मातरिश्वा' का अर्थ 'अन्तरिक्ष में विचरण करने वाला' है ।

Then Vayu also speedily went towards Yaksa. Yaksa asked him, "Who are you?" He replied, "I am known as Vayu, as well as Matarisva."

Note : The meanings of 'Vayu' and 'Matarisva' are 'speedily moving' and 'blowing in space', respectively.

'तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमिति' । 'अपीदं सर्वमाददीय, यदिदं पृथिव्यामिति' ॥९॥

पदार्थ—यक्ष ने पूछा, "(तस्मिन् त्वयि) ऐसे तुझ में (किम् वीर्यम् इति) क्या और कैसी सामर्थ्य है ?" वायु ने उत्तर दिया, "(इदं सर्वम् अपि) इन समस्त वस्तुओं को ही (आददीय) मैं अपने साथ उड़ाकर

ले जा सकता हूं, (यत्) जो कुछ भी (इदम्) यह (पृथिव्याम् इति) इस पृथिवी पर विद्यमान है।"

At this, Yaksa asked him, "What actual powers do you possess?" Vayu replied, "I can blow away with me all that is present on this earth?"

तस्मै तृणं निदधौ । एतदादत्स्वेति । तदुपप्रेयाय सर्व-जवेन । तन्न शशाकादातुम् । स तत एव निववृते । नैतदशकत् विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥१०॥

पदार्थ—यक्ष ने (तस्मै) उस वायु की शक्ति-परीक्षा के लिए (तृणम्) एक तिनके को (निदधौ) उसके सामने रख दिया। तक उसने वायु से कहा, "(एतत् आदत्स्व इति) इस तिनके को उड़ा ले जाओ।" तब वह वायु (तत् उप) उस तिनके की ओर (सर्वजवेन) पूरे वेग के साथ (प्रेयाय) दौड़ कर गया, किन्तु (तत्) उसे (आदातुम्) उड़ा ले जाने में (न शशाक) समर्थ नहीं हो सका। (सः) तब वह वायु (तत एव) उस यक्ष के पास से इसी कारण ही (निववृते) लौट आया। (एतत्) इस बात को (विज्ञातुम्) जानने में (न अशकत्) वह समथ नहीं हो सका (यत्) कि "(एतत् यक्षम्) यह यक्ष (किम् इति) कौन है और कैसा है ?" अर्थात्, वायु भी यह न जान सका कि, "वास्तव में यह 'यक्ष' कौन है ?"

Yaksa put forth a straw for Vayu and asked him to carry it away. Vayu blew heavily towards it with all the speed, but could not succeed in carrying it away. He, then refrained and returned due to own failure. Consequently, he did not succeed in knowing the actual identity of Yaksa.

अथेन्द्रमब्रुवन् 'मघवन्नेतद्विजानीहि, किमेतद् यक्षमिति'। 'तथेति'। तदभ्यद्रवत्। तस्मात् तिरोदधे ॥११॥

पदार्थ—(अथ) तब वे दिव्य शक्तियाँ (इन्द्रम् अब्रुवन्) इन्द्र के पास जाकर बोलीं, "(मघवन्) हे इन्द्र ! आप (एतत्) इस तथ्य को (विजानीहि) पता लगाइए कि (एतत्) यह (यक्षम्) यक्ष (किम् इति) वास्तव में कौन है ?" इन्द्र ने कहा, "(तथा इति) ऐसा ही होगा"। तब वह इन्द्र (तद् अभि) उस यक्ष की ओर (अद्रवत्) द्रुतगति से पहुँचा। परन्तु तब तक वह यक्ष (तस्मात्) उस स्थान से या उस इन्द्र के सामने से (तिरोदधे) तिरोहित हो गया था या छिप चुका था।

Then they said to Indra, "O Indra, you please try to know as to what is this Yaksa?" He replied to them, 'So be it'. He then sped towards Yaksa. But by then Yaksa had already hid himself from Indra.

स तस्मिन् एवाऽऽकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानाम् उमां हैमवतीम्। तां होवाच, 'किमेतद् यक्षम्' इति ॥१२॥

पदार्थ—(स) वह इन्द्र (तस्मिन् एव) उसी (आकाशे) आकाश या स्थान में (स्त्रियम्) एक स्त्री के पास (आजगाम) आया, जो (बहुशोभमानाम्) बहुत अधिक शोभा से युक्त थी एवं (हैमवतीम्) हिमवान् पर रहने वाली (उमाम्) 'उमा' नाम की थी। (ताम् ह उवाच) वह उससे बोला, "(एतत्) यह (यक्षम्) यक्ष (किम् इति) वास्तव में कौन है ?"

In the same space or place Indra came face to face with a woman, who was very much beautiful and lived on the snowy Himalayas. She was known as Uma. He then asked her, "what is the reality about this Yaksa?

चतुर्थः खण्डः

हैमवती उमा का उत्तर

सा ब्रह्मेति होवाच । ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वम् इति । ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥१॥

पदार्थ—(सा) वह उमा (उवाच) बोली, "(ब्रह्म इति) यह ब्रह्म है", (वा) और यह कि "(एतद्ब्रह्मणः) इस ब्रह्म की (विजये) विजय में, अर्थात् सभी दिव्यशक्तियों की अपेक्षा इसके सर्वाधिक महत्त्व एवं प्रतिष्ठा में, (महीयध्वम्) तुम भी अपनी महत्ता समझो, या तुम भी प्रसन्नता अनुभव करो।" (ततः ह एव) उमा के इस कथन से ही इन्द्र (विदाञ्चकार) जान पाया कि वह यक्ष (ब्रह्म इति) ब्रह्म ही है'।

व्याख्या— उमा यहां सांसारिक दिव्यशक्तियों से भिन्न अध्यात्म-शक्ति की प्रतिनिधि दिव्यशक्ति के रूप में बताई गई है। 'ब्रह्म' की सत्यता को केवल आत्मशक्ति के द्वारा ही जाना जा सकता है। जब तक आत्मा प्रबुद्ध नहीं होता, ब्रह्म की कल्पना को नहीं जाना जा सकता। अतः इन्द्र रूपी आत्मा के इस प्रबोधन के लिए अध्यात्म-ज्ञान की आवश्यकता है। संसार की शक्तियों से भी ऊपर के सत्य को खोजने के और जानने के लिए इसी अध्यात्मज्ञान की ओर उन्मुख होने की आवश्यकता होती है। संसार की शक्ति-सामर्थ्य की सीमा को जानकर ज्यों ही हम उस परम दिव्य सत्ता—ब्रह्म—को जानने के लिए उन्मुख और उत्सुक होते हैं, तभी हमें उसका रहस्य तत्काल ज्ञात हो जाता है।

यहां उमा इसी तथ्य को बताती है कि संसार की सभी दिव्य शक्तियां उसी परम अध्यात्मशक्ति से प्रसूत होती हैं। अतः ब्रह्म के महत्त्व में ही उनका अपना महत्त्व भी मिला रहता है। अतः उन्हें ब्रह्म के इस सर्वाधिक महत्त्व को ही समझने का प्रयास सदा करना चाहिए। वही सब सत्यों से बड़ा सत्य है। अन्य सब सत्य उसके ही अंशमात्र हैं।

Uma replied to Indra's querry, "Yaksa is Brahman itself. You also feel pleasure and joy in this victory of Brahman". Thus, Indra came to know the reality about Yaksa being Brahman, only after this revelation by Uma.

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान् देवान्, यदग्निर्वायुरिन्द्रः। ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पृशुः। ते ह्येनत् प्रथमो विदाञ्चकार, ब्रह्मेति ॥२॥

पदार्थ—(यत् अग्निः वायुः इन्द्रः) ये जो अग्नि वायु और इन्द्र हैं, (एते देवाः) ये देवता (अन्यान् देवान्) अन्य सभी देवों से (तस्मात्) ब्रह्म को जानने के इस प्रसंग के बाद से ही अथवा इस ब्रह्मज्ञान के कारण ही (अतितराम् इव) अत्यधिक बढ़कर विद्यमान हैं। (ते हि) उन्होंने ही (एनत्) इसे (नेदिष्ठम्) अत्यन्त निकट से (पस्पर्शुः) स्पर्श किया है। (ते हि) उन्होंने ही (एनत्) इसे (प्रथमः) सर्वप्रथम अथवा प्रमुखतम रूप में (विदाञ्चकार) पहचाना कि (ब्रह्म इति) यही ब्रह्म है।

Only because of their attempt at this knowledge, these three divine powers, i.e., Agni, Vayu and Indra, far exceeded in supremacy than other divine powers. Only they touched him from the nearest. Only they knew first of all about Him that, "this Yaksa is Brahman itself."

तस्माद् वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान् देवान् । स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श । स ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥३॥

पदार्थ—(तस्माद् वा) और इसी कारण से (इन्द्रः) इन्द्र (अन्यान् देवान्) अन्य देवताओं की अपेक्षा (अतितराम् इव) अधिक बढ़कर है। (स हि) उसने ही (एनत्) इस ब्रह्म को (नेदिष्ठम्) निकटतम रूप में (पस्पर्श) स्पर्श किया था। (स हि) उसने ही (एनत्) इसको (प्रथमः) सर्वप्रथम अथवा प्रमुखतम रूप में (विदाञ्चाकर) जाना या पहचाना था कि (ब्रह्म इति) यही ब्रह्म है।

And only because of this, Indra far exceeded in supremacy than other divine powers. He touched it from the nearest. Only he knew about Him before anyone else, that "He is the Brahman."

तस्यैष आदेशो यदेतद् विद्युतो व्यद्युतद् आ३ इति । इन्न्यमीमिषद् आ३ इति । अधिदैवतम् ॥४॥

पदार्थ—(तस्य) उस इन्द्र का (एषः) यह (आदेशः) कथन या उपदेश है कि (एतद्) यह ब्रह्म ही (विद्युतः) ज्योति और द्युति से सम्पन्न सभी दिव्यशक्तियों या देवताओं को (व्यद्युतद् आ इति) ज्योति प्रदान करता है, अथवा उन्हें (न्यमीमिषद् आ इति) ज्योतिहीन कर देता है। (अधिदैवतम्) दिव्य शक्तियों की दृष्टि से उसका यही रूप वास्तविक है।

व्याख्या—"वह ब्रह्म सभी दिव्य शक्तियों को प्रकाशित करता है और वही उन्हें प्रकाशहीन भी करता है। अर्थात्, वह सभी दिव्यशक्तियों

या देवताओं के लिए प्रकाश का स्रोत भी है और उसकी ज्योति के सामने अन्य सब देवता ज्योतिहीन भी दिखाई देते हैं"। यह रहस्य इन्द्र ने ही सर्वप्रथम समझाया।

Only Indra explained this fact first of all that, "it is Brabman, which gives light and glow to all other divine powers, as also extinguishes them." This is the explanation from the point of view of divinity. In other words, "It is the Brahman that is source of all the light and which outshines all other lighted bodies, which are illuminated by itself".

अथाध्यात्मं यदेतद् गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं संकल्पः ॥५॥

पदार्थ—(**अथ**) और (**अध्यात्मम्**) आत्मा द्वारा आन्तरिक दृष्टि से विचार करने पर (**यत् एतत् मनः**) जो यह मन (**गच्छति इव**) चलता हुआ या गति करता हुआ सा प्रतीत होता है, (**अनेन च**) इससे ही (**एतत्**) इस परब्रह्म को (**उपस्मरति**) स्मरण किया जाता है। (**अभीक्ष्णम्**) बार-बार करने पर यही स्मरण (**संकल्पः**) मन का संकल्प या दृढ़ विचार बन जाता है।

व्याख्या—यदि दिव्यशक्ति के रूप में ब्रह्म को देखें, तो वह ही समस्त दिव्यशक्तियों का प्रकाशक और नियन्त्रण करने वाला दिखाई देता है। किन्तु यदि उसका विचार अपने अन्दर ही करना हो, तो वह मन के द्वारा जाना जाता है। मन स्थिर रहते हुए भी दूर से दूर तक पहुँच जाता है। यही बात 'ब्रह्म' के विषय में भी सत्य है। मन में ब्रह्म का स्मरण बार-बार करने पर वह मन का 'संकल्प' बन जाता है। अर्थात्, तब मन सदा उसके महत्त्व और उसकी वास्तविकता को अपने

सामने रखता है। ये दोनों दृष्टियाँ ही क्रमशः 'आधिदैविक' और 'आध्यात्मिक' कहलाती हैं।

And if we can see it internally, then it appears to be moving like our mind, with the help of which we can see and remember Him. This repeated rememberance becomes, then, our 'Samkalpa' or 'Intent'?

तद्ध तद्वनं नाम। तद्वनम् इत्युपासितव्यम्। स य एत-देवं वेदाभि हैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति ॥६॥

पदार्थ—(तत्) वह ब्रह्म (ह) ही (तत् वनं नाम) परम उपासनीय या भक्ति योग्य है। (तत् वनम् इति) 'वह ही उपासनीय है', ऐसा सोच कर (तत्) उसकी ही (उपासितव्यम्) उपासना करनी चाहिए। (सः) वह व्यक्ति (यः) जो (एतद्) इसे (एवम्) इस प्रकार से या इस रूप में (वेद) जान लेता है, (सर्वाणि) सभी (भूतानि) प्राणी (एनम्) इसे (अभि) चारों ओर से या सर्वथा (संवाञ्छन्ति) चाहने लगते हैं।

व्याख्या—जो पुरुष उस ब्रह्म को परम सत्य जानकर उसकी ही उपासना करना अपना कर्त्तव्य मानता है, वह अन्य सभी मनुष्यों के लिए वांछनीय और अनुकरणयोग्य बन जाता है।

That Brahman alone is the adorable one. Therefore, He must be served with all the dedication. Whosoever comes to know this fact becomes adorable for all others and from all-around.

'उपनिषदं भो ब्रूहीति'। 'उक्ता त उपनिषद्। ब्राह्मीं वाव त उपनिषदमब्रूमेति' ॥७॥

पदार्थ—शिष्य कहता है, "(**भो**) हे पूज्य, (**उपनिषदम्**) इस संवाद के वास्तविक रहस्य को (**ब्रूहि इति**) मुझे समझाइए।" गुरु ने उत्तर दिया, "(**ते**) तुम्हारे लिए (**उपनिषद्**) इस संवाद के वास्तविक रहस्य को (**उक्ता**) पहले ही समझा दिया है। (**वाव**) निश्चय ही (**ते**) तुम्हारे लिए हमने (**ब्राह्मीम् उपनिषदम्**) ब्रह्म सम्बन्धी रहस्यविद्या को (**अब्रूम**) बता दिया है।"

The pupil says, "Tell me, O Teacher, the real essence or secret of this knowledge." The teacher replies, "We have already revealed to you the real secret of this knowledge. Certainly, we have already revealed to you the secret of that Brahman."

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा, वेदाः सर्वाङ्गानि, सत्यमायतनम् ॥८॥

पदार्थ—(**तस्यै**) उस रहस्य विद्या को पूरी तरह जानने के लिए (**तपः दमः कर्म**) तप, इन्द्रिय-संयम और कर्त्तव्य-बुद्धि से किये जाने वाले कर्म (**इति**) ये सब (**प्रतिष्ठाः**) आधारभूत तत्त्व हैं। अर्थात् इन तीनों तत्त्वों के सेवन से ही हम उस रहस्य को पूरी तरह जानने के योग्य हो सकते हैं। उस रहस्य-विद्या के (**सर्वांगानि**) सब शरीराङ्गों के रूप में (**वेदाः**) वेद स्थित हैं। अर्थात्, सम्पूर्ण वेदों में उस ब्रह्म-विद्या का ही वर्णन है। अतः 'वेद' उस विद्या के 'शरीरांगों' के रूप में हैं। और, उस विद्या का (**आयतनम्**) निवास-स्थल या रहने का स्थान (**सत्यम्**) सत्य है। अर्थात्, यह विद्या परम सत्य पर ही आधारित है।

The penance, self-control and dutiful dedication make the basis or foundation of that Brahmavidya. Vedas are like the main limbs or organs of the body of

that Vidya. And, the truth is like the dwelling place for that Vidya. Therefore, one must try to improve in these matters, so that he may come to know the real secret of this dialogue or 'Upanisad'.

यो वा एतामेवं वेद, अपहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके प्रतितिष्ठति । ज्येये प्रतितिष्ठति ॥६॥

पदार्थ—(यः) जो (व) निश्चय से (एताम्) इस ब्रह्म-विद्या या उपनिषद् को (एवं वेद) उक्त प्रकार से जान लेता है, वह (पाप्मानम्) पाप-भावना को (अपहत्य) दूर भगा कर (अनन्ते स्वर्गे लोके) सदा स्थिर रहने वाले और सदा सुख से भरे रहने वाले संसार में (प्रतितिष्ठति) स्थिर रूप से निवास करता है; तथा (ज्येये) उससे भी अधिक सुखमय अवस्था में (प्रतितिष्ठति) स्थिर रहता है ।

Whosoever comes to know this Brahmavidya or Upanisad in the aforesaid way, he enjoys forever the heavenly pleasures and joys, after removing or diminishing the effects of his own sins. He enjoys still greater and endless joys, after becoming purified and devoid of all the sins.

कठोपनिषद्

पूर्वभूमिका

उपनिषद् : महत्त्व

कभी जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् एवं दार्शनिक शॉपन हॉवर ने उपनिषदों को 'आत्मा की शान्ति का अपूर्व स्रोत' कहा था। उसने उन्हें 'विश्व की उच्चतम दार्शनिक कृतियां' भी कहा था। तब से आज तक पूर्व और पश्चिम के अनेकानेक विद्वानों ने उपनिषदों का गम्भीर अध्ययन करके उन्हें 'वेदोत्तरकाल की सब से महत्त्वपूर्ण रचना' स्वीकार किया है।

उपनिषदों की रचना मूलतः प्रश्नोत्तर शैली में हुई है। **'उप'** का **अर्थ** है 'समीप' और **'निषद्'** का अर्थ है 'बैठना'। जिज्ञासु या शिष्य जब गुरु-चरणों में बैठकर अपनी शंकाओं का निवारण करवाता था, तब उन दोनों के बीच हुए वार्तालाप से ही इन उपनिषदों का मूलतः जन्म हुआ होगा। बाद में लेखकों या विचारकों ने स्वतन्त्ररूप में भी नए-नए वैदिक विषयों को लेकर उन पर चिन्तन आरम्भ कर दिया। परन्तु दोनों ही दशाओं में 'पास बैठने की इस समीपता' का एक अन्य मूल उद्देश्य अक्षुण्ण रहा : 'आत्मा और परमात्मा के परस्पर साक्षात्कार और समीप आजाने की भावना'। और, यह भावना सभी उपनिषदों में समान रूप से व्यक्त हुई है।

नामकरण

इस उपनिषद् का सम्बन्ध यजुर्वेद की **कठ** शाखा से है। इसी कारण इसका नाम **'कठोपनिषद्'** पड़ा है। इसे ही कुछ विद्वज्जन **'काठकोपनिषद्'** के नाम से भी कहते हैं। इसका वक्तव्य विषय भी 'ईशोपनिषद्' की भाँति 'शुक्ल यजुर्वेद' के **चालीसवें अध्याय** पर ही आधारित है।

वक्तव्य

दोनों में ही समान रूप से सांसारिक ऐश्वर्य और प्रलोभनों की अनित्यता एवं असत्यता को, तथा आत्मा की अमरता और ब्रह्म की सर्वोच्चता को, बताया गया है। इसके साथ ही, दोनों में ही संसार को उत्तम कामों की स्थली के रूप में वर्णित किया गया है। दोनों में ही जीवन को सही प्रकार से जीने पर बल दिया गया है, इससे भागने पर नहीं। इस जीवन को जीने के लिए यह जानना परम आवश्यक है कि आत्मा अजर और अमर है तथा परम आत्मा या **ब्रह्म** उस आत्मा का भी अधिनियन्ता बनकर स्थित है। इस तथ्य को जानने के बाद कोई भी आत्मा जीवन को अनासक्ति और त्याग की भावना के साथ जी सकता है। जीवन की वास्तविकता भी यही है। हम अपनी वहिर्मुख इन्द्रियों और उनके विषयों में आसक्त होकर आत्मा की उच्चता एवं महत्ता की ओर से विमुख हो जाते हैं। जब हम इन्द्रियों और उनके विषयों की असत्यता को पहचानकर इस आत्मा के महत्त्व को पहचान लेते हैं, तभी हम जीवन को सही रूप में जीने के अधिकारी होते हैं। यह आत्मा अनादि और अनन्त है। **'पुरुष'** या **'ब्रह्म'** इसके इसी अनन्त और सर्व-व्यापक रूप को कहते हैं। किन्तु सांसारिक जीवन में मन, बुद्धि और इन्द्रियादि से संयुक्त होकर आत्मा का जो अंश जीवन और लोक में शरीर के अन्दर प्रविष्ट होकर अवतरित होता है, वह अपने उस **नित्य** रूप को भूलकर विषयों और लोक की अनित्यता की ओर आकृष्ट हो जाता है। निस्सन्देह यह संसार जीने और भागने के लिए है। किन्तु इसमें आसक्त हो कर इन भोगों के आश्रित हो जाने पर हम इसके आवागमन के चक्कर में पड़ जाते हैं। जन्म और मरण का यह पुनरावर्ती चक्कर तब तक चलता रहता है, जब तक हम आत्मा की अनन्तता को पहचानकर पर-मात्मा या ब्रह्म की वास्तविकता को अपने मनन और चिन्तन में अवतरित नहीं कर लेते। यही बात इस उपनिषद् के माध्यम से समझाई गई है।

कथा के स्रोत

इस कथा का उद्‌गम तीन विविध स्रोतों से खोजा जा सकता है। ये तीनों स्रोत हैं : **ऋग्वेद**, **तैत्तिरीय ब्राह्मण**, और **महाभारत** ! इनमें से अधिकांशतः आधार '**तत्तिरीय ब्राह्मण**' का ही लिया गया है। कहा जा सकता है कि थोड़े से हेर-फेर के साथ उसी कथा को पुनः प्रस्तुत कर दिया गया है। यहां हम इन तीनों ही स्रोतों के विषय में तनिक संक्षेप में विचार करना उचित समझते हैं।

ऋग्वेद

इसके अनेक सूक्तों में '**यम**' की चर्चा आयी है। सर्वप्रसिद्ध सूक्त है 'यम-यमी सूक्त' ! इस सूक्त में वर्णित विषय का प्रस्तुत उपनिषद् के, साथ किसी भी प्रकार कोई सम्बन्ध नहीं है। अन्य दो महत्वपूर्ण सूक्त हैं दशम मंडल के १३वें और १४वें सूक्त। तेरहवें सूक्त में '**यम**' और '**मृत्यु**' को एक ही देवता के दो पार्श्वों के रूप में वर्णित किया गया है। उसे 'पिता' भी कहा गया है। चौदहवें सूक्त में यम को 'विवस्वान् पुत्र' या **वैवस्वत** के रूप में कहा गया है। यहां यम को हविः ग्रहण करने के लिए यज्ञवेदी पर आहूत किया गया है। सातवें और आठवें मन्त्र में यम को पितरों के पास जाने और वहां से पुनः घर की ओर लौट आने की बात कही गई है। बाद में तेरह से पन्द्रह मन्त्र तक यम के लिए मधु-मत्तम हविर्दान करने की बात कही गई है। वही हमें दीर्घ आयु प्रदान करने वाला बताया गया है। पांचवें मन्त्र में यम के पिता द्वारा किये जा रहे यज्ञ में यम को आकर विराजने की प्रार्थना की जा रही है।

निश्चय ही इन बातों से यह तो सिद्ध नहीं किया जा सकता कि 'कठोपनिषद्' की कथा ऋग्वेद के इन सूक्तों पर ही आधारित है; किन्तु यम का जो रूप इनमें वर्णित है वह अवश्य ही कठोपनिषद् में वर्णित उसके रूप से मिलता-जुलता है। यम यज्ञ का आचार्य है। उसकी हविः का भागी है। वह आयु की दीर्घता देने वाला भी है और जीवन को अवसान या अन्त प्रदान करने वाला भी। काल के नियामक सूर्य का वह

प्रसूत पुत्र है। कदाचित् इसीलिए उसे 'काल' भी कह दिया जाता है। वह उन भागों और रहस्यों को जानता है, जिन्हें पितरों ने अपने सुकृतों से पार करके अनन्त लोकों को प्राप्त किया था। इससे भी बढ़कर यदि इस चौदहवें सूक्त के सातवें और आठवें मन्त्र को सही रूप में लिया जाए, तो यहां यजमान या साधक अपने पुत्रादि को कह रहा है कि, "तुम उन पथों पर ही चलते रहो, जिन पर तुमसे पहले तुम्हारे पूर्वज गए हैं। ऐसे मार्गों पर चलकर तुम यम और वरुण के दर्शन करो और उन्हें पहचानो। तब यम की सहायता और साथ लेकर परम व्योम में पहुचो। तब उस परम सत्य को जानकर और अपने अकथनीय या निन्द्य आचरणों को छोड़कर पुनः अपने घर वापिस आओ।" निश्चय ही इन दो मन्त्रों में वर्णित यह बात ही कठोपनिषद् की कथा का वास्तविक आधार कही जा सकती है। नचिकेता का पिता उसे परम सत्ता के ज्ञान के लिए यम के पास भेजता है। यम उसे मृत्यु और उसके बाद के **परमव्योम** का रहस्य समझाता है। उसे जानने के बाद नचिकेता फिर से अपने घर वापिस आता है। वह अपने अज्ञान को पीछे छोड़ आता है। हां, इस उपनिषद् में कथा को इस मूल रूप में देकर भी यम द्वारा दिए उस ज्ञान को विस्तार से अवश्य समझाया गया है, जो स्वयं वेदोक्त भावना के ही अनुकूल है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण की कथा

तैत्तिरीय ब्राह्मण में वेद की भावना को एक कथा का रूप देकर समझ.ने का यत्न किया गया है। यजुर्वेद की कृष्ण शाखा से सम्बद्ध होने के कारण इस 'ब्राह्मण' की कथाओं का आधार यज्ञ भावना ही है। परन्तु यज्ञ का उद्देश्य क्या है, यह समझना भी आवश्यक है। इस कथा के माध्यम से यज्ञ के ही उद्देश्य को स्पष्ट किया गया है। इसके साथ ही अन्य भी कई बातें उपलक्षणवशात् इसमें आ गई हैं। इन्हें समझने से पूर्व यहां वर्णित कथा को समझना परम आवश्यक है। संक्षेप में यह कथा इस प्रकार है: "वाजश्रवस ने यज्ञ के उपरान्त दक्षिणा के रूप में अपना

सर्वस्व दान कर दिया । दक्षिणाओं के ले जाये जाने पर उसके पुत्र नचिकेता के मन में श्रद्धा का उदय हुआ और उसने पूछा, 'आप मुझे किसको दे रहें हैं ?' बार-बार पूछने पर पिता ने उसे कहा, "तुझे मैं मृत्यु को देता हूं?" उसी समय एक अशरीरी वाणी ने नचिकेता को कहा, "मैं तुझे मृत्यु को देता हूं । पर तब तुम वहां पहुंचना, जब वह प्रवास पर गए हों। तुम बिना खाए उसके घर में तीन दिन तक रहना । लौटने पर जब वह पूछे, तब बता देना कि तुम तीन रात तक उसके घर रहे हो । जब वह प्रत्येक दिन के भोजन के बारे में पूछे, तब उसे बताना कि तुमने 'पहले दिन उसकी प्रजाओं को खाया', 'दूसरे दिन उसके पशुओं को', और 'तीसरे दिन उसके पुण्यकृत्यों को खाया' । उसने ऐसा ही किया । तब यम ने प्रत्युत्तर में उससे वर मांगने को कहा । नचिकेता ने प्रथम वर माँगा, "मैं पिता तक जीवित ही पहुँचूं ।" उसने दूसरा वर माँगा, "मेरे इष्टापूर्त कैसे अक्षत रह सकते हैं ?" यम ने इसके उत्तर में उसे 'नाचिकेत अग्नि' का ज्ञान दिया । उसने तीसरा वर माँगा, मृत्यु की हानि या अपचिति अथवा मृत्यु से छुटकारा कैसे हो सकता है ?' यम ने बताया कि, "इसी 'नाचिकेत अग्नि' के सेवन से मृत्यु से भी छुटकारा पाया जा सकता है ।"

कठोपनिषद् की कथा से इसमें अन्तर यह है कि एक तो यम के द्वारा तीनों रात्रियों या दिनों का भोजन पूछने पर नचिकेता तीन ऐसी चीज़ों को गिनता है, जिन्हें सामान्य दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता । दूसरा यह कि **तीसरा प्रश्न** या वर वही होने पर भी उसके उत्तर में 'मृत्यु और उसके बाद की स्थिति का स्वरूप समझाने' के स्थान पर 'नाचिकेत अग्नि' का ही यम ने पुनः उपदेश दिया है, और उससे ही मृत्यु के पुनरावर्तन की सम्भावना का समाप्त होना बताया गया है ।

विवेचना की दृष्टि से इसमें विचार्य बात यह है कि यहां नचिकेता ने पिता से अपने सम्बन्ध में प्रश्न किसी अश्रद्धा के कारण न पूछ कर श्रद्धावश ही पूछा है : 'जब सब कुछ ही दान कर रहे हैं, तब मुझे क्यों शेष बचा रहे हैं ?' यह प्रथम जिज्ञासा है, जो उसे ज्ञान की पिपासा के मार्ग

पर ले चलती है। यम को यहां जीवन के रहस्यों का एकमात्र ज्ञाता बताया गया है। नचिकेता को उसके पास जाकर ही सारे रहस्यों को समझने की बात कही गई है। **अथर्ववेद** के 'ब्रह्मचर्य सूक्त' में भी शिष्य को आचार्य के कुल या उदर में **तीन रात्रि** तक रहने को ही कहा गया है। नचिकेता की ज्ञानप्राप्ति भी आचार्य के यहां ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने से ही सम्भव हो सकती थी। अतः जिज्ञासा का उदय और चिन्तन-सामर्थ्य के जागृत होते ही उसे आचार्यकुल में भेजना वांछनीय हो जाता है। वहीं वह जीवन और मृत्यु के रहस्यों को समझने में समर्थ हो पाता है।

इस प्रकार आकारतः भिन्न होने पर भी इस 'ब्राह्मण' की कथा ही 'कठोपनिषद्' की कथा का मूल आधार कही जा सकती है। सत्य तो यह है कि इसकी भाषा और इसकी वाक्य-रचना को भी यथावत् अधिकांशतः इस उपनिषद् में लिया गया है।

महाभारत की कथा

'महाभारत' में भी नचिकेता का यही आख्यान दिया गया है। किन्तु वहां इसे अधिक ऐतिहासिक एवं लोकानुकारी रूप दिया गया है। संक्षेप में कथा इस प्रकार है: "यज्ञ में दीक्षित उद्दालकि का पुत्र नचिकेता उनकी सेवा करता है। एक बार नदीतट पर भूले समिधा-भोजनादि को लाने के लिए भेजने पर जब नचिकेता खाली हाथ लौटा, तब पिता ने उसे **'यमं पश्य'** अर्थात् 'जा यम को देख' के रूप में शाप दिया। यह सुनते ही हतचेत होकर वह ऋषिपुत्र वहीं गिर पड़ा। पिता ने समझा कि वह मर गया है। हतचेत और शोकाकुल होकर उन्होंने दिन का शेष भाग एवं पूर्ण रात्रि सन्ताप में ही बिताई। प्रातः उठने पर उन्होंने नचिकेता को दिव्य आभा से युक्त होकर पुनरुज्जीवित होते देखा। पिता ने समझा कि वह दिव्य शरीर को प्राप्त करके वहां आया है। पूछने पर नचिकेता ने बताया कि, "आपके आदेशानुशार मैंने यम के लोक एवं सभा को देख लिया है। मुझे देखते ही यम ने मुझे आपके योग्य सम्मान दिया। जब मैंने यम से अपने लिए योग्य लोकों को भेजे जाने की प्रार्थना की तो उन्होंने बताया

कि मैं मरा नहीं था, बल्कि आपके आदेशानुसार मुझे केवल यम के दर्शन करने थे । आपके कथन को रखने के लिए ही मुझे यमलोक जाना पड़ा था । यम ने कहा कि 'अब तुम लौट जाओ ?' प्रसन्न होकर यम ने फिर पूछा, "प्रिय अतिथि, मैं तुम्हारी मनोकामना के अनुरूप और क्या दूं ?" तब मैंने कहा कि वे मुझे उन लोकों के दर्शन करा दें, जहां से कोई लौटता नहीं और जहां केवल पुण्यात्मा ही जाते हैं । उन्होंने मुझे उन लोकों का दर्शन भी कराया और उनकी प्राप्ति का उपाय भी बताया । इन उपायों में प्रमुख हैं: **स्वाध्याय, तप** और **वैतान अग्नि द्वारा यज्ञ** ।

इस प्रकार इस कथा को मनावैज्ञानिक दृष्टि से सहज एवं सम्भव बना दिया गया है । नचिकेता मरा नहीं है । निस्संज्ञता की अवस्था में ही उसे आत्मबोध हो जाता है । यह आत्मबोध ही स्वाध्याय, तप और यज्ञ के महत्त्व को उसके सम्मुख स्पष्ट कर देता है ।

मुख्य बातें इस कथा में ये हैं : इसमें पिता के क्रोध को शाप के माध्यम से व्यक्त किया है । नचिकेता को केवल निस्संज्ञ होता बताया है । उपवास आदि की चर्चा नहीं की गई । पुण्य लोकों के दर्शन प्रत्यक्षतः कराए गए हैं । वरों की संख्या तीन नहीं एक ही है । तथा, नाचिकेत अग्नि के स्थान पर '**वैतान अग्नि**' के चयन और संधान की बात कही गई है । निस्संज्ञता की अवस्था में यह सब घटित होने से इसमें असम्भावना का प्रश्न ही नहीं उठता ।

'कठोपनिषद्' की कथा

जैसा कह आए हैं, इस उपनिषद् की कथा मूलतः तैत्तिरीय ब्राह्मण की ही कथा पर आधारित है । वाजश्रवस अपने पुत्र नचिकेता के अश्रद्धा से भरने पर उसके ही बार-बार पूछने पर उसे 'मृत्यु को देने' की बात कहते हैं । नचिकेता यम के घर जाता है । बिना किसी दैवीय वाणी के कहे, वह वहां तीन रात अनशन की अवस्था में रहता है । अतिथि को तीन रात तक भूखा-प्यासा द्वार पर पड़ा जान कर अपने घर लौटने पर यम उससे तीन वर माँगने को कहते हैं । पहले **दो** वर और उनके प्रतिदान

'ब्राह्मण' में कहे अनुसार ही हैं। केवल **तीसरे** वर के विषय में **अन्तर** है। प्रश्न यहां भी मृत्यु के ही सम्बन्ध में पूछा गया है; किन्तु मृत्यु के बाद की स्थिति के विषय में ; उसकी हानि या उससे छुटकारा पाने के विषय में नहीं। यद्यपि प्रयोजन दोनों का एक ही है : 'जन्म-मरण के चक्र से छूटने का उपाय जानना।' उत्तर यहां अवश्य ही अन्तर के साथ दिया गया है। यम ने यहाँ 'ब्राह्मी स्थिति' को समझाया है और उसे पाना ही लक्ष्य बताया है। 'नाचिकेत अग्नि' को बिना साधे कोई साधक मृत्यु के बाद की स्थिति को न तो जान ही सकता है और न पा ही सकता है।

इस दृष्टि से उपनिषद् की कथा न तो केवल यज्ञ और दक्षिणा के महत्त्व को बताने के लिए कही गई है और न ही इसमें ऐतिहासिकता और सामान्यता लाने का यत्न किया गया है। ब्राह्मणोक्त भावना को अक्षुण्ण रखते हुए भी इसके माध्यम से यहां यह उपदेश देने का यत्न किया गया है कि संसार की अवास्तविकता एवं असत्यता को सही रूप में जानकर यहां ही मृत्यु के बाद भी आत्मा की अमरता को जान लेना उचित है। ऐसा ज्ञान पाकर ही कोई व्यक्ति इस असत्य से भरे संसार में रहकर भी परम सत्य की उपलब्धि कर सकता है। इस उपनिषद् में '**नचिकेता**' नाम भी सार्थक ही है : 'अप्रबुद्ध'। **यम** यहाँ आचार्य का प्रतिनिधि है और **नचिकेता** जिज्ञासु और ब्रह्मचारी का ! 'नाचिकेत अग्नि' का आशय 'ब्रह्मचर्यपूर्वक स्वाध्याय और तप' से ही है।इनका साधन किये बिना कोई भी व्यक्ति मृत्यु और अमरता के वास्तविक रहस्य को नहीं जान सकता।

श्रीमद्भगवद्गीता से तुलना

ऊपर महाभारत की कथा का उद्धरण हमने दिया है। उसी महाभारत का सर्वोत्कृष्ट अंश है 'श्रीमद्-भगवद्गीता'। एक ओर जहाँ यह उपनिषद् 'ईशोपनिषद्' अपिवा यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के सन्देश को आगे बढ़ाती है, वहां दूसरी ओर भगवद्गीता के उपदेश से इसमें आश्चर्यजनक साम्य है। सच तो यह है कि इसकी अनेक कारिकाएं गीता में लगभग अक्षरशः ही अन्तर्गृहीत हुई हैं। प्रथम अध्याय की द्वितीय वल्ली की सोलहवीं कारिका से आरम्भ करके उपनिषद् की समाप्ति तक अनेक

कारिकाएं ऐसी हैं, जो अनेकत्र शब्दश: और अन्यत्र अधिकांशत: 'गीता' की कारिकाओं से मिलती-जुलती हैं। गीता की अपेक्षा निश्चय ही यह 'उपनिषद्' प्राचीन है। क्योंकि नचिकेता का तीसरा वर 'आत्मा की अमरता' से सम्बद्ध है, अत: अर्जुन को 'आत्मा की अमरता' समझाने के प्रसंग में दोनों उपदेशों में समानता होना स्वाभाविक है। फिर, कृष्ण को तो कहा भी 'उपनिषद् रूपी गायों को दोग्धा' गया है। वेदों और उपनिषदों के परम ज्ञाता एवं पारखी श्रीकृष्ण ने यदि अपने से पूर्व विद्यमान सभी कारिकाओं या मन्त्रों को अविकल या छाया रूप में अपनाया ही हो, तो यह उचित एवं उनकी प्रवृत्ति के अनुकूल ही था। वे भी एक 'नचिकेता' या 'अज्ञानी' को पहले से विद्यमान सही मार्ग ही दिखा रहे थे; किसी नये पन्थ की रचना उनका लक्ष्य नहीं था। गीता का सम्पूर्ण उपदेश भी आत्मा की इस अमरता पर ही केन्द्रित है। इसीलिए गीता के केन्द्रीभूत स्थलों में हम इस उपनिषद् के सन्देश से अत्यधिक साम्य पाते हैं।

अन्य उपनिषदादि से साम्य

इस प्रकार का साम्य कुछ अन्य ग्रन्थों में आई कारिकाओं के साथ भी पाया जाता है। **मैत्रायणी** संहिता के कुछ मन्त्र इस उपनिषद् की कुछ कारिकाओं में अनुकृत हुए दीखते हैं। **मुण्डकोपनिषद्** एवं **श्वेताश्वतरोपनिषद्** की अनेक कारिकाओं का भी इस की अनेक कारिकाओं से अद्भुत साम्य है। सम्भवत: ऐसा विषय की समानता के कारण हुआ है। ऐसी प्रवृत्ति को हमें 'नकल' न कहकर 'स्वीकृति' की दृष्टि से देखना चाहिए। जिन कारिकाओं का आशय सर्वमान्य रूप में स्वीकृत हो जाता था, उन्हें वैसे ही स्वीकृत करके अपना लिया जाता था। जिन उपनिषदों के कर्त्ताओं ने अपने नाम का प्रचार तक उचित न समझा, उन्हें अपनी साहित्यिक रचना-शक्ति दिखाने की व्याग्रता तो हो ही कैसे सकती थी? अपने व्याख्यान-प्रवाह में वे सर्वमान्य कारिकाओं को यथावत् देकर भी अपने सन्देश के महत्त्व को ही स्थापित करना चाहते थे। इसीलिए अनेक कारिकाओं में ऐसा साम्य दिखाई देता है।

भाषा और रचना-काल

इस उपनिषद् की भाषा का तैत्तिरीय ब्राह्मण की भाषा से अद्‌भुत साम्य है। निस्संदेह उसी कथानक को उन्हीं शब्दों और उसी शैली में आगे बढ़ाना इस उपनिषद् के कर्त्ता का लक्ष्य रहा होगा। फिर भी कारिकाओं का जो अधिकांश भाग या तो इस उपनिषद् का मौलिक अंग है, या अन्यत्र से गृहीत किया गया है, उसमें मूल 'ब्राह्मण' की भाषा से कोई आश्चर्यजनक अन्तर नहीं है। निश्चय ही यह भाषा निरुक्त की भाषा की अपेक्षा अत्यधिक प्राचीन है। **महाभारत** और **श्रीमद्‌भागवद् गीता** की भाषा से भी यह अत्यधिक प्राचीन है। अतः स्पष्ट है कि '**तैत्तिरीय ब्राह्मण**' की रचना के एक-दो शती के भीतर ही इसकी भी रचना मूलतः हो गई होगी। **ईशोपनिषद्** और इस उपनिषद् के सन्देशों की साम्यता एवं उनमें बताए आत्म-ज्ञान के उपादानों की समानता यह भी बताती है कि इसकी रचना 'ईशोपनिषद्' की उपनिषद्-रूप में मान्यता के कुछ ही कालान्तर से हुई होगी। दूसरों शब्दों में, इसे अत्यन्त प्राचीन उपनिषद् माना जा सकता है। निश्चय ही महाभारत से बहुत पहले ही यह उपनिषद् विद्यमान थी।

आत्मा ब्रह्म और यज्ञ

इस उपनिषद् के वक्तव्य विषय को समझने से पहले इसमें वर्णित इन तत्त्वों के विषय में भी विचार कर लेना उचित है। इस उपनिषद् में जहाँ 'ब्रह्म' को सर्वव्यापी, अनादि और अनन्त आत्म-तत्त्व के रूप में बताया गया है, वहां 'देही' के रूप में उसके एक निम्न रूप को भी पृथक् से समझाया गया है? इसे ही 'जीव' नाम से भी कुछ स्थलों पर कहा गया है। इस जीव या जीवात्मा को ही 'बुद्धीन्द्रियमनोयुक्त' और 'भोक्ता' कहा गया है। आत्मा का यही रूप कर्म करता है और **यथाकर्म** और **यथाश्रुत** लोकों को प्राप्त करता है। इसका मूल स्वरूप 'ब्रह्म' के मूल स्वरूप से अभिन्न है। किन्तु यह उसे विना जाने अज्ञान मार्ग में फँसकर इस लोक के भ्रमावह कार्यों में ही मोह जमा लेता है, और अपने मूल स्वरूप

को जानने का यत्न नहीं करता। अपने मूल स्वरूप को जान कर और उसे पाने के प्रयत्न करके यह भी अपने लिए 'अनन्तता' की स्थिति को प्राप्त करता है। इस अज्ञानमय आत्मा या 'जीवात्मा' का ही प्रतीक यहाँ **नचिकेता** को बताया गया है। **यम** या आचार्य उसे वास्तविक ज्ञान का परिचय देता है। तब वह आत्मज्ञान पाकर जगत् एवं जागतिक व्यवहार के प्रति प्रवुद्ध दृष्टि को अपनाने में समर्थ होता है।

इसी प्रसंग में यज्ञ की उपयोगिता को भी समझ लेना अभीष्ट है। आरम्भ में यहां वाजश्रवस को ही **'सर्वमेध'** यज्ञ करते बताया गया है। बाद में यम अतिथि के प्रति अपने कर्तव्य को निभाने के लिए **अतिथि-यज्ञ** करता है। इस की दक्षिणा के रूप में ही वह नचिकेता को तीन वर माँगने को कहता है। नचिकेता के दूसरे वर के उत्तर में वह जिस 'नाचिकेत अग्नि' का स्वरूप एवं उसकी उपयोगिता और अनिवार्यता समझाता है, वह वास्तविक **यज्ञाग्नि** ही है। 'गीता' की भाषा में इसे हम 'ज्ञानाग्नि' भी कह सकते हैं। 'ब्रह्म' के ज्ञान और उपलब्धि की चर्चा को हम 'ब्रह्म-यज्ञ' का स्थानीय मान सकते हैं। परन्तु इस पर भी यह सत्य है कि इस उपनिषद् का लक्ष्य यज्ञों का महत्त्व या स्वरूप बताना नहीं रहा रहा है। सत्य तो यह है कि इसमें यज्ञ द्वारा उपलब्ध तत्त्व या स्थिति के विषय में ही विवेचन और चिन्तन किया गया है। हाँ, यह अवश्य है कि 'ब्रह्म' के ज्ञान को पाने का एकमात्र और अनिवार्य साधन 'नाचिकेत अग्नि' के चयन को बताया गया है। उसके बिना कोई भी जीव सही लक्ष्य को पाने में समर्थ नहीं हो सकता।

इस भाष्य के सम्बन्ध में

इस उपनिषद् के भाष्य-प्रसंग में यह निवेदन कर देना आवश्यक है कि इसकी रचना करते समय हमारे ध्यान में केवल उपाधि-कक्षाओं के छात्र ही नहीं रहे हैं। इसकी मूल रचना यद्यपि विद्यार्थियों की दृष्टि से हुई है, तथापि अर्थ और व्याख्या करते समय हमारा ध्यान सामान्य पाठकों एवं जिज्ञासु अध्येताओं की ओर भी रहा है। अपने ज्ञान के अनुसार हमने

उपनिषद् की मूल भावना को अक्षुण्ण रखने का प्रयास किया है। यद्यपि अंग्रेज़ी में केवल अनुवादमात्र ही दिया गया है, तथापि उसे अधिक स्पष्ट बनाने का प्रयास किया गया है।

इसके मुद्रण के सम्बन्ध में भी दो बातें कह देना उचित होगा। अंग्रेज़ी के मुद्रण में स्वरांकित अक्षरों का प्रयोग होना अनिवार्य होता है। प्रेस की ओर से हमें ऐसा करने का विश्वास भी दिलाया गया था। पर बाद में किन्हीं कारणों से ऐसा होना सम्भव नहीं हो सका। **ईश**, **केन**, और **कठ** उपनिषदों के इन भाष्यों में रोमनाक्षरों के सम्बन्घ में हुई इस त्रुटि के सम्बन्ध में हम क्षमाप्रार्थी हैं। अगले संस्करणों में इस त्रुटि को अवश्य ही दूर कर दिया जायगा। पर विद्यार्थियों की दृष्टि से यह त्रुटि कुछ जानबूझ कर भी सह ली गई है। कारण यह है कि बी.ए. तक के विद्यार्थी एवं अंग्रेज़ी का सामान्य पाठक भी प्रायः ही स्वरांकित रोमानाक्षरों से प्रायः परिचित नहीं होता। इसलिए ऐसी त्रुटि उनके हित में ही मानी जाएगी।

दूसरी बात प्रेस की ओर से की गई आशातीत विलम्ब की है। इन तीनों उपनिषदों के मुद्रण के कालान्तर में हमें कितनी मानसिक परेशानियों में से गुजरना पड़ा, उनका वर्णन न करना ही अभीष्ट होगा। फिर भी प्रेस के मालिकों को धन्यवाद देना उचित ही है, क्योंकि उन्होंने अन्ततः कार्य को सुरुचि और स्वच्छता से पूर्ण करने का प्रयास किया है।

डी० ए० वी० कॉलेज की प्रबन्ध-समिति के अध्यक्ष एवं मन्त्री जी को भी, समिति के अन्य सदस्यों सहित, धन्यवाद देना मैं अपना कर्तव्य मानता हूं, जिन्होंने इस पुण्य कार्य का भार मुझे सौंपकर एक अन्य ही दिशा में चिन्तन का अवसर मुझे प्रदान किया।

आशा है सुधी पाठक त्रुटियों से विचलित न होकर अपनी सार-ग्राहिता का परिचय देंगे।

—: ० :—

॥ ओ३म् ॥

कठोपनिषद्

प्रथम अध्याय : प्रथमवल्ली

उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ । तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ॥१॥

पदार्थ—(उशन् ह) कामना से भरे या यज्ञ का फल चाहने वाले (वाजश्रवसः) वाजश्रवाः के पुत्र या वंशधर ने (सर्ववेदसम्) अपनी सम्पूर्ण सम्पदा को (ददौ) दूसरों में बाँट दिया या दे दिया। (तस्य ह) उस का (नचिकेताः नाम) नचिकेता नाम का (पुत्रः) पुत्र (आस) था।

Desirous of winning the fruits of his sacrificial act or Yajna, the son of Vaajashravah, donated and gave away all his wealth to the needy ones. He had a son named Naciketa.

तं ह कुमारं सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश । सोऽमन्यत ॥२॥

पदार्थ—(दक्षिणासु) दानयोग्य दक्षिणाओं के (नीयमानासु) ले जाये

जाने पर (**कुमारं सन्तम्**) अत्यन्त छोटा बालक होने पर भी (**तं ह**) उस नचिकेता में या उसके हृदय में (**श्रद्धा अविवेश**) श्रद्धा ने प्रवेश किया। अर्थात्, जब दक्षिणा के लिए विविध वस्तुएँ ले जाई जा रही थीं, तब अत्यन्त अल्पायु होने पर भी नचिकेता के हृदय में यज्ञ और दक्षिणा के प्रति श्रद्धा और आदर की दृष्टि जागी। (**सः अमन्यत**) वह इस प्रकार सोचने लगा।

When the things to be donated were being carried for giving away, Naciketa's heart was filled with the faith; though he was still only a kid. He started thinking in this way.

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रयाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत्॥३॥

पदार्थ—"जो गाएँ (**पीतोदकाः**) जी भर कर पानी पी चुकी हैं, (**जग्धतृणाः**) खाने योग्य सभी प्रकार की घास को जी भर कर खा चुकी हैं, (**दुग्धदोहाः**) जितना भी दूध दे सकती थीं वह सब दे चुकी हैं। अर्थात्, जिनकी दोहन सामर्थ्य समाप्त हो चुकी है। (**निरिन्द्रियाः**) जिनकी इन्द्रियों में कर्म-शक्ति नहीं रह गई है। अर्थात्, जिनकी इन्द्रियाँ शिथिल हो चुकी हैं। (**ताः**) उन गायों को जो (**ददत्**) देता है, (**सः**) वह (**तान्**) उन लोकों को (**गच्छति**) प्राप्त होता है, (**लोकाः**) जो लोक (**अनन्दाः नाम**) आनन्द और हर्ष से रहित हैं, और इसीलिए जिन्हें 'अनन्द' कहा जाता है।

व्याख्या—यहाँ इस बात को बताया जा रहा है कि यदि दान देना ही हो, तो ऐसी गायों या वस्तुओं को देना चाहिए जो दूसरों के लिए उपयोगी हों। जिनका पूरा-पूरा लाभ पहले ही उठाया जा चुका है और अब जिनमें

अन्य कुछ करने या देने की सामर्थ्य नहीं रह गई है, उन्हें दान देने से दान न देना कहीं अच्छा है। ऐसा दान देकर भी दाता दान देने के बाद पछताता ही रहता है।

Who donates such cows, who have already enjoyed all kinds of enjoyable waters, who have already tasted all kinds of grasses upto their full capacity, who have been milched to their best capability, and who have become weaker from the point of view of their sensory and other organs, goes to those worlds which are totally dvoid of pleasures and are known as 'pleasureless'.

स होवाच पितरं, 'तात कस्मै मां दास्यतीति'। द्वितीयं तृतीयं तं होवाच, 'मृत्यवे त्वा ददामीति' ॥४॥

पदार्थ—(**स ह**) तब वह (**पितरम् उवाच**) पिता से बोला, (**तात**) "हे पिता! आप (**माम्**) मुझे (**कस्मै**) किसके लिए (**दास्यति इति**) दान में देंगे। जब उसने (**द्वितीयं तृतीयम्**) दूसरी बार, तीसरी बार भी (**तम्**) उसे (**ह**) इसी प्रकार (**उवाच**) कहा, तब पिता ने उत्तर में कहा, "(**त्वा**) तुझे (**मृत्यवे**) मृत्यु या यम के लिए (**ददामि**) मैं दे रहा हूं'।

व्याख्या—इस प्रकार के निकृष्ट दान की व्यर्थता को देखकर नचिकेता ने अपने पिता को समझाने की दृष्टि से पूछा, "तब फिर आप मुझे किसको दे रहें ?" अर्थात्, जब आपके पास देने के लिए कोई भी उपयोगी वस्तु नहीं है, तब इससे तो अच्छा है कि आप मुझे ही किसी को दे दें। जब इसी प्रश्न को उसने दो-तीन बार दोहराया, तब उसके पिता ने खीझकर कहा, "इससे तो अच्छा है, तुझे मृत्यु ही ले जाए।"

टिप्पणी—'मृत्यु' को 'यम' भी कहते हैं। एक ओर यह जीवन के

'अन्त' की सूचना देता है, दूसरी ओर 'यम' को आचार्य भी माना गया है। जिस प्रकार 'मृत्यु' एक जीवन की समाप्ति और दूसरे जीवन के आरम्भ की सूचना देती है, उसी प्रकार 'आचार्य' भी छोटे बालक को अपनी शरण में लेकर माता-पिता के घर में उसके जीवन की समाप्ति कर देता है और उसे शिक्षा देकर नया जीवन प्रदान करता है।

Nachiketa, purturbed as he was, asked his father, "For whom you are going to donate me, then?" When he repeated the same question twice or thrice, his father replied, "I give you away to the death or Mrityu."
Note : 'Mrityu' represents 'death' as will as 'teacher'.

बहूनामेमि प्रथमः, बहूनामेमि मध्यमः ।
किं स्विद् यमस्य कर्त्तव्यं, यन्मयाऽद्य करिष्यति ॥५॥

पदार्थ—इस पर वह छोटा सा नचिकेता अपने मन में सोचने लगा, "(**बहूनाम्**) बहुतों से मैं (**प्रथमः**) पहला (**एमि**) ठहरता हूं, जबकि (**बहूनाम्**) बहुतों से मैं (**मध्यमः**) दूसरे नम्बर पर या बहुत छोटा (**एमि**) ठहरता हूं। ऐसी स्थिति में (**यमस्य**) यम या मृत्यु का (**किं स्विद्**) ऐसा कौन सा (**कर्त्तव्यम्**) करने योग्य काम है, (**यत्**) जिसे वह (**अद्य**) आज (**मया**) मेरे द्वारा (**करिष्यति**) पूरा करेगा?"

व्याख्या—नचिकेता आयु में बहुत छोटा था। मृत्यु का नाम सुनकर वह घबराया नहीं। पर उसे यह भी समझ नहीं आया कि उसके पिता इतनी छोटी आयु में ही उसे मृत्यु को क्यों दे रहे हैं? मृत्यु तो बड़ी आयु होने पर आती है। उसने सोचा कि, "मैं कुछ बच्चों से अधिक बड़ा हूं, जब कि बहुतों से मैं छोटा भी हूं। पर यम या मृत्यु का कौन सा कार्य ऐसा है, जो मेरे जैसे इतने छोटे बच्चे से सिद्ध हो सकता है?"

After hearing this, Nachiketa thought in his mind, "though I am elder to many, still I am younger to so many others. Then, what purpose will be served for Mrityu by utilising such a young one as myself?"

अनुपश्य यथा पूर्वे, प्रतिपश्य तथाऽपरे ।
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते, सस्यमिवाऽऽजायते पुनः ॥६॥

पदार्थ—"**(यथा)** जिस प्रकार **(पूर्वे)** तुमसे पहले लोग उत्पन्न होकर मृत्यु को प्राप्त हुए हैं, **(अनु पश्य)** उनकी ओर देखो **(तथा)** और **(अपरे)** तुम्हारे बाद आने वाले लोग जिस प्रकार जन्म लेंगे **(प्रति पश्य)** उन्हें भी देखो। इस प्रकार तुमसे पूर्व के लोगों के इस संसार से विदा होने और भविष्य में होने वालों को जन्म लेते देखकर तुम जान पाओगे कि **(मर्त्यः)** मरण-धर्मा या देहधारी मनुष्य **(सस्यम् इव)** धान्य या खेती की तरह **(पच्यते)** पकता है। अर्थात्, जिस प्रकार खेती धीरे-धीरे पकती है और तब काटी जाती है, उसी प्रकार मनुष्य भी धीरे-धीरे बढ़ता है और बाद में देह त्यागता है। साथ ही यह भी देखोगे कि **(सस्यम् इव)** धान्य की ही तरह वह **(पुनः)** फिर से **(आ जायते)** उसी रूप में नया जन्म लेकर सामने आता है।"

व्याख्या—इसमें खेती के उदाहरण के द्वारा इस तथ्य को समझाया गया है कि मनुष्य का जीवन भी खेती के समान ही समय-समय पर काटा जाता है और फिर-फिर जन्म लेता है। हमारे पूर्वजों के मरण और हमारी सन्तानों के जन्म से यही बात पुष्ट होती है। अतः **जन्म** और **मरण** जीवन के दो नित्य धर्म हैं। इनमें से किसी एक से प्रसन्न होने और दूसरे से डरने की आवश्यकता नहीं है।

Looking towards the departed predecessors, as also

towards the coming generations, one should come to look upon the mortal life like a Crop. As the old crop is chopped and reaped and the new crop is grown in its place,so happens with the life. While the older ones depart from the life, newly born take their place. In this way, the life goes on flowing incessantly.

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान् ।
तस्यैतां शान्ति कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ।।७।।

प्रसंग—ऊपर कहे ढंग से सोचते हुए नचिकेता ने यम या आचार्य के गृह में शिक्षार्थी के रूप में प्रवेश किया। यम कहीं बाहर गए थे। नचिकेता उनके द्वार पर तीन दिन तक बिना खाए-पिये पड़ा रहा। लौटने पर आचार्य ने उसे देखा। उन्हें बहुत दुःख एवं पश्चात्ताप हुआ; क्योंकि अतिथि का महत्त्व बहुत अधिक होता है। तब आचार्य ने अपने पारिवारिक जनों को इस प्रकार समझाया :

पदार्थ—"वास्तव में (**ब्राह्मणः**) ज्ञान की इच्छा से युक्त (**अतिथिः**) अतिथि (**गृहान्**) लोगों के घरों में (**वैश्वानरः**) वैश्वानर अग्नि के रूप में (**प्रविशति**) प्रवेश करता है। (**तस्य**) उसकी (**शान्तिम्**) शान्ति या तृप्ति को (**एताम्**) इस रूप में, अर्थात् जलादि दान देकर, (**कुर्वन्ति**) करते हैं।" तब वह नचिकेता से बोला, "हे अतिथि। (**वैवस्वतोदकम्**) मुझ यम या आचार्य के इस जलादि को (**हर**) ग्रहण कीजिए।"

When after entering the home of Acharya or Yama, is his absence, Nachiketa had to pass three nights without any food, Yama felt sorry for this on his return. He told his family members that, "Whenever a guest,

desirous for gaining knowledge, enters in someone's home, he enters it as Vaishvaanara fire. Then to pacify him one should try in all the ways". And then he said to Nachiketa, "Please accept this offering of water from my hands".

आशाप्रतीक्षे संगतं सूनृतां
चेष्टापूर्त्ते पुत्रपशूँश्च सर्वान् ।
एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो
यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे ॥८॥

पदार्थ—यम ने फिर कहा, "(**यस्य**) जिस (**अल्पमेधसः**) बुद्धिहीन (**पुरुषस्य**) पुरुष के (**गृहे**) घर में (**ब्राह्मणः**) ब्रह्मज्ञानी या ब्रह्मज्ञान पाने का इच्छुक विद्यार्थी (**अनश्नन्**) बिना अन्नजल ग्रहण किए (**वसति**) रहता है, (**एतत्**) उसका इस अनशन के साथ रहना उस गृहपति की (**आशाप्रतीक्षे**) आशाओं एवं भविष्य सम्बन्धी प्रतीक्षाओं या आकांक्षाओं को, (**संगतम्**) विद्वज्जनों के साथ संगति के फल को, (**सूनृताम्**) जीवन में प्रयुक्त सत्य और मधुरवाणी एवं उनके प्रभाव को, (**इष्टापूर्त्ते च**) यज्ञादि इष्ट एवं जनकल्याणकारी कार्यों के फल को, तथा (**सर्वान् पुत्रपशून् च**) सभी पुत्रादि एवं पशुधन आदि के महत्त्व को (**वृङ्क्ते**) क्षीण या नष्ट कर देता है। अथवा, विदा होते हुए अपने साथ ही ले जाता है। अर्थात्, अतृप्त अतिथि गृहपति के सभी पुण्यों का फल अपने साथ ही ले जाता है।

He exaplained further, "In whosesoever fool's home lives such a guest without receiving any food, while departing he carries away the benefits or fruits of all his hopes and expectations, of his wise and good companion-

ships, truthful and sweet tounge, desired sacrifices and other noble deeds, as well as the fruits of having sons and cattle-wealth, etc."

In other words, if one cannot satisfy his guest, then all his aforesaid things become meaningless.

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मेऽ-
नश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः ।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु,
तस्मात् प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व ॥९॥

पदार्थ–तब आचार्य या यम ने नचिकेता से कहा, "(**ब्रह्मन्**) हे ब्रह्म-स्वरूप अतिथि (**यत्**) जो तुम (**तिस्रः रात्रीः**) तीन रात तक (**मे गृहे**) मेरे घर में (**अनश्नन्**) बिना खाए-पिए (**अवात्सीः**) रहे हो। वास्तव में तुम (**अतिथिः**) मेरे पूज्य अतिथि हो, एवं (**नमस्यः**) प्रणामयोग्य हो। (**ब्रह्मन्**) हे ब्रह्मस्वरूप नचिकेता, (**नमः ते अस्तु**) तुम्हारे लिए मेरा प्रणाम अर्पित है। जिससे (**स्वस्ति अस्तु**) मेरा कल्याण हो सके, (**तस्मात्**) इसके लिए आप (**त्रीन् वरान्**) तीन वरों को (**प्रतिवृणीष्व**) मुझसे प्रतिदान रूप में चुनकर माँग लें"।

Yama said to Nachiketa, "Being guest, you are worthy of my salutations, O Brahman. But, instead, you have stayed in my house for these three nights without having any food. I bow before you, O Brahman, and pray you for my own well-being. Because of my own fault, I would feel pleased if you choose and ask me for any three favours".

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्,
वीतमन्युर्गौतमो माऽभि मृत्यो ।
त्वत्प्रसृष्टं माऽभिवदेत् प्रतीतः,
एतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥१०॥

पदार्थ—उत्तर में नचिकेता ने कहा, "(**मृत्यो**) हे मृत्युरूपी आचार्य, (**वराणाम्**) आपके दिये तीन वरों में से (**एतत्**) इस (**वरम्**) वर को (**प्रथमम्**) सबसे पहले (**वृणे**) माँगता या चुनता हूं। (**यथा**) ऐसा हो कि (**गौतमः**) गौतमकुलोत्पन्न मेरे पिता (**मा अभि**) मेरे प्रति (**शान्तसंकल्पः**) शान्त विचार वाले, (**सुमनाः**) प्रसन्न चित्त वाले, एवं (**वीतमन्युः**) क्रोध से रहित (**स्यात्**) हो जाएं, तथा (**त्वत् प्रसृष्टम्**) आपके द्वारा मृत्युमुख से मुक्त किए गए मुझे देखकर (**प्रतीतः**) प्रसन्न और विश्वासपूर्ण होकर ही (**अभिवदेत्**) मेरे साथ बोलें।"

In reply, Nachiketa said, "O Yama, the Teacher and the Death, I ask you this much as the first of your three promised favours that my father Gautama might become pacified, pleased and devoid of any anger towards me. May he also talk to me in a trusting way, when I return to him after being delivered by you from the clutches of the death".

यथा पुरस्ताद्भविता प्रतीतः
औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः ।
सुखं रात्रीः शयिता वीतमन्यु—
स्त्वां ददृशिवान्मृत्युमुखात् प्रमुक्तम् ॥११॥

पदार्थ—यम ने प्रत्युत्तर में कहा, "(**मत् प्रसृष्टः**) मेरे द्वारा प्रेरित किया हुआ (**औद्दालकिः आरुणिः**) उद्दालक-वंश में उत्पन्न और अरुण का पुत्र तुम्हारा पिता (**प्रतीतः**) तुम्हारे प्रति आश्वासन से युक्त होकर (**यथा पुरस्तात्**) पहले के समान ही (**भविता**) हो जाएगा और (**त्वाम्**) तुम्हें (**मृत्युमुखात्**) मृत्यु या यम की पकड़ से (**प्रमुक्तम्**) छूटा हुआ (**ददृशिवान्**) देखकर वह (**वीतमन्युः**) क्रोधरहित होकर (**रात्रीः**) रातों में (**सुखं शयिता**) सुख की नींद सोएगा।"

व्याख्या—यमरूपी आचार्य ने प्रथम वर को स्वीकार करते हुए कहा, "जब तुम मुझ आचार्य के यहाँ से शिक्षा ग्रहण करके पुनः अपने पिता के पास पहुँचोगे, तब तुम्हारे ज्ञान से समृद्ध रूप को देखकर वह तुम्हारे अज्ञान के सम्बन्ध में उत्पन्न अपनी पुरानी शंकाओं को भूल जाएगा और तुम्हारे प्रति आश्वस्त और आशामय होकर सुख की नींद सो सकेगा।" अर्थात्, "अब तुम्हारे सम्बन्ध में उसकी सब चिन्ताएँ दूर हो जाएँगी।"

Yama replied to Nachiketa, granting him his first demand, "Your father, who belongs to the Uddaalaka family and is son of Aruna, will again become fully reassured as before, when he will see you set free by me, as if returned from the jaws of death. From now onwards, he would pass his nights peacefully, devoid of any anger for you".

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति,
न तत्र त्वं, न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वा अशनायापिपासे
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥१२॥

पदार्थ—दूसरा वर माँगते हुए नचिकेता यम से कहता है, "(**स्वर्गे लोके**) सुखमय या स्वर्ग लोक में (**किंचन भयं न अस्ति**) कोई भी या किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता। (**तत्र**) वहाँ (**न त्वम्**) न तो तुम अर्थात् मृत्यु ही विद्यमान रहते हो और (**न**) न ही वहाँ कोई (**जरया**) बुढ़ापे से (**बिभेति**) डरता है। बल्कि (**अशनायापिपासे**) भूख और प्यास (**उभे**) दोनों को (**तीर्त्वा**) पार करके या जीत कर साधक व्यक्ति (**शोकातिगः**) शोक से मुक्त या पार होकर (**स्वर्गलोके**) उस सुखमय लोक या स्थिति में (**मोदते**) सदा आनन्दित रहता है।"

While asking for granting his second prayer, Nachiketa said to Yama, "I have heard that there is no fear in the heavenly worlds. You also do not reach there in the form of death. No one fears old age, there. In that heavenly state, one enjoys and experiences merriment only, after crossing the stage of sorrows and after winning over the hurdles of hunger and thirst."

स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो,
प्रब्रूहि त्वं श्रद्दधानाय मह्यम् ।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्ते
एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण ॥१३॥

पदार्थ—नचिकेता आगे कहता है, "(**मृत्यो**) हे मृत्युरूपी आचार्य, (**सः**) इस प्रकार के (**त्वम्**) आप (**स्वर्ग्यम्**) सुख को प्राप्त कराने वाले (**अग्निम्**) प्रकाश पर भी (**अधिएषि**) नियन्त्रण रखते हो, या उसे पूरी तरह जानते हो। (**त्वम्**) आप ही (**श्रद्दधानाय**) श्रद्धा रखने वाले (**मह्यम्**) मुझे (**प्रब्रूहि**) उसके सम्बन्ध में स्पष्टता से बताइये, जिसको जानकर या

पाकर (स्वर्गलोकाः) उस सुख या स्वर्ग की स्थिति को पा लेने वाले लोग (अमृतत्वम्) अमरता को (भजन्ते) प्राप्त करते हैं। मैं (एतत्) इस बात या ज्ञान को (द्वितीयेन वरेण) दूसरे वर के द्वारा (वृणे) चुनता हूं या माँगता हूं"।

He added, "O Mrityu. as a teacher you know or govern that enlightening or illuminating light, which leads us towards that pleasureful state. You please explain me the reality about it, as I have come to thee with full faith. Only after knowing it, the people enjoying heavenly pleasures feel as if they have become immortals. I pray thee for granting my prayer about this knowledge, in exchange for my second boon or demand."

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध
स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन् ।
अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां
विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ।।१४।।

पदार्थ—उत्तर में यम ने कहा, "(**नचिकेतः**) हे नचिकेता ! (**ते प्रब्रवीमि**) मैं तुझे बताता हूं। (**मे तत् उ निबोध**) मुझसे उसके बारे में तू जान ले। (**एतम्**) इस (**स्वर्ग्यम्**) सुख या स्वर्ग देने वाले (**अग्निम्**) प्रकाश या ज्ञान को (**गुहायाम्**) अपने भीतर ही, मानों किसी गुफा में, (**निहितम्**) स्थित या छिपा हुआ (**प्रजानन्**) जानकर, अर्थात् यह रहस्य जानकर कि यह अग्नि या प्रकाश तुम्हारे ही हृदय के भीतर छिपा रहता है, केवल इसे देखने भर की आवश्यकता है, (**त्वम्**) तू (**अनन्तलोकाप्तिम्**) कभी समाप्त न होने वाली सुखमय स्थिति को तथा (**प्रतिष्ठाम्**) प्रतिष्ठा या स्थायिता

को, अथवा सदा स्थिर रहने वाली सुखमय स्थिति को, (विद्धि) जान ले और पा ले।"

व्याख्या—यहाँ यम ने यह सत्य स्पष्ट किया है कि सुख या स्वर्ग देने वाला अग्नि या प्रकाश प्रत्येक व्यक्ति के भीतर ही छिपा हुआ है। इसे, कहीं बाहर खोजने की बजाए, अपने ही हृदय में खोजना चाहिए। इस रहस्य को जान कर, तथा इस प्रकार उस प्रकाश को पाकर, उस सुखमय स्थिति को सदा के लिए स्थायी बनाया जा सकता है।

Yama, the Guru, said in reply, "I will tell you, O Nachiketa. Understand it from me. O Nachiketa, after knowing this fact, that this light leads towards the pleasures and remains hidden or well kept in your own heart, may you get the everlasting and unending worlds of joys".

लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै
या इष्टका यावतीर्वा यथा वा।
स चापि तत्प्रत्यवदद् यथोक्त—
मथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः ॥१५॥

पदार्थ—(**तस्मै**) उस नचिकेता के लिए (**तम्**) उस (**लोकादिम्**) लोकों के आदि कारणभूत अथवा उनकी सृष्टि या रचना के कारणभूत (**अग्निम्**) अग्नि या प्रकाश के विषय में (**उवाच**) उस यम ने बताया। उसने यह सब भी बताया कि यज्ञादि के द्वारा उसे पूजने के लिए यज्ञकुण्ड आदि के निर्माण के लिए (**याः**) किन-किन (**यावतीर्वा**) और कितनी (**यथा वा**) अथवा किस प्रकार की (**इष्टकाः**) ईंटों या अन्य इष्ट वस्तुओं का

प्रयोग करना होता है। **(स अपि च)** तब उस नचिकेता ने भी **(तत् यथोक्तम्)** उस समस्त बात को जैसे गुरु ने बताया था वैसे ही अक्षरशः **(प्रत्यवदत्)** दुहरा कर सुना दिया। **(अथ)** तब **(तुष्टः)** सन्तुष्ट हुए **(मृत्युः)** मृत्युरूपी आचार्य ने **(पुनः)** फिर से **(अस्य आह)** इसे यह बात कही।

टिप्पणी—यहाँ 'इष्टकाः' का जन-प्रचलित अर्थ 'ईंट' और शब्दगत अर्थ 'प्रिय तथा चाही हुई वस्तुएँ' दोनों ही रूप में लिया जा सकता है।

Then the teacher Yama told Nachiketa all about this Agni, the eternal light, which is the creator of, as well as older than, even the universe. He also told him about which necessary material is to be used for the aforesaid purpose. Nachiketa also repeated that entire statement before his teacher. Satisfied upon this, the teacher further told him in the following manner.

तमब्रवीत् प्रीयमाणो महात्मा,
वरं तवेहाद्य ददामि भूयः।
तवैव नाम्ना भविताऽयमग्निः
सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण ॥१६॥

पदार्थ—**(प्रीयमाणः)** सन्तुष्ट या प्रसन्न होते हुए **(महात्मा)** उस महान् आचार्य ने **(तम्)** उस नचिकेता को **(अब्रवीत्)** कहा, "**(तव)** तुम्हें **(इह)** इस विषय में **(अद्य)** आज या इस समय **(भूयः)** इस तुम्हारे माँगे द्वितीय वर से भी अधिक रूप में **(वरम्)** यह वर **(ददामि)** देता हूँ। अर्थात्, तुम्हारी माँगी कामना तो पूरी होगी ही, इतनी बात मैं अपनी ओर से जोड़ देता हूँ। वह यह कि **(अयम् अग्निः)** पहले बताया यह अग्नि, जो स्वर्ग या सुख की ओर ले जाने वाला है, **(तव एव नाम्ना)** आज से तुम्हारे ही नाम

से (**भविता**) जाना जाएगा। (**इमाम् च**) साथ ही, इस (**अनेकरूपाम्**) अनेक रूप वाली (**सृङ्काम्**) माला को (**गृहाण**) मुझ से लो । अर्थात्, आज से इस अग्नि को लोग तुम्हारे नाम से ही 'नाचिकेत अग्नि' के रूप में पहचानेंगे। अतः तुम इसके अनेकविध स्वरूप को मुझ से पूरी तरह समझ लो।"

व्याख्या—यहाँ 'अग्नि' को अनेक रूपवाली माला कहने का तात्पर्य यह है कि यह 'अग्नि' केवल 'भौतिक अग्नि' ही नहीं है। इसके अनेक रूप हैं। इस संसार में इसे पहचानने के लिए इसके उन अनेक रूपों का ज्ञान होना परम आवश्यक है। इसीलिए यहाँ गुरु शिष्य को उस माला को पूरी तरह जान लेने की बात कह रहा है।

Satisfied and pleased Yama, the teacher, told Nachiketa further, "Now and here I grant you a further boon from my own side. From now onwards this 'Agni' will be known by your name, i.e. as 'Agni of Nachiketa'. But to understand this, you will have to know about its various forms and facets. So, take that knowledge also from me, in the form of a multicoloured rosary, illuminating in its various forms and facets."

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं
त्रिकर्मकृत् तरति जन्ममृत्यू ।
ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा
निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥१७॥

पदार्थ—(**त्रिणाचिकेतः**) नाचिकेताग्नि को तीन प्रकार से या

तीन बार प्रयोग करने वाला साधक (**त्रिभिः सन्धिम् एत्य**) इन तीनों अग्नियों से पूर्णतया परिचित होकर, अथवा प्रत्यक्ष, आगम और अनुमान प्रमाणों द्वारा इस अग्नि के सत्य को जानकर, (**त्रिकर्मकृत्**) ज्ञान-उपासना-कर्म, अथवा यज्ञ-दान-स्वाध्याय, के रूप में अपने तीनों कर्मों को पूर्ण करते हुए (**जन्ममृत्यू तरति**) जन्म और मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है। अर्थात्, इस प्रकार का व्यक्ति जीवन के रहस्य को जानकर 'मुक्ति की अवस्था' को पालेता है। दूसरे शब्दों में, उसे जन्म-मृत्यु का भय भी नहीं रहता। इसके साथ ही (**ब्रह्मजज्ञं**) ब्रह्म अथवा वेद के द्वारा जानने योग्य अथवा परमेश्वर द्वारा उत्पन्न सारी चराचर सृष्टि को जानने वाले एवं (**ईड्यम्**) स्तुतियोग्य (**देवम्**) दिव्य-गुण सम्पन्न देवाधिदेव प्रकाश या अग्नि-रूप परमेश्वर को (**विदित्वा**) भली प्रकार जानकर तथा (**इमां सृङ्काम्**) इस पूर्वोक्त माला को (**निचाय्य**) भली प्रकार निश्चयात्मक रूप से जानकर या इसका चयन करके (**अत्यन्तम्**) अत्यधिक रूप में (**शान्तिम्**) शान्ति या कल्याणमय स्थिति को (**एति**) प्राप्त करता है।

"The one, who has kindled or employed Agni of Nachiketa thrice or in three ways, and has thus established intimacy with these three types or ways of employing the said Agni, crosses over the hurdles of life and death, after performing his threefold duties in respect to Yajna or sacrifice, Svaadhyaya or self-study, and donation or Daana. It is only after knowing the praiseworthoy or adorable all-resplendent Divine Supreme, who is known through the Vedas, or who knows evrything produced by himself, as also after properly employing or using the afosresaid multicoloured rosary, that one can attain the everlasting and abundant peace and well-being".

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद् विदित्वा
य एवं विद्वाँश्चिनुते नाचिकेतम् ।
स मृत्युपाशान् पुरतः प्रणोद्य
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥१८॥

पदार्थ—(एतत् त्रयम्) इसके तीनों रूपों को सामूहिक रूप से (विदित्वा) जानकर ही कोई व्यक्ति (त्रिणाचिकेतः) तीन प्रकार की पूर्वोक्त नाचिकेत अग्नि को जानने वाला या उसे तीन बार प्रयोग करने वाला कहलाता है। (यः) जो व्यक्ति या साधक (एवं विद्वान्) इस रूप में उसे पहचान लेता है, वह ही (नाचिकेतम्) 'नाचिकेत' नाम की अग्नि को (चिनुते) यज्ञार्थ चयन करने में या उसका सन्धान करने में समर्थ हो पाता है। (सः) ऐसा व्यक्ति (मृत्युपाशान्) मृत्यु की पकड़ को (पुरतः प्रणोद्य) अपने सामने से हटाकर या भगाकर (शोकातिगः) शोकादि से मुक्त होकर या उन्हें पार करके (स्वर्गलोके) सुखमय लोक में या ऐसी स्थिति में (मोदते) सदा आनन्दित या हर्षमय रहता है।

Yama tells Nachiketa further, "Only after knowing the aforesaid trio, a man can truly be called as 'Trinachiketas'. Whosoever knows this fact, only he becomes capable of kindling the Nachiketa Agni in its true form. Such a man drives away the clutches of the death from his way and enjoys eternally the heavenly pleasures, after going beyond the approach of sorrows."

एष ते अग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो
यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण ।
एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनास-
स्तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व ॥१९॥

पदार्थ—(**नचिकेतः**) हे नचिकेता, (**एषः**) यह (**स्वर्ग्यः**) सुख और प्रकाश देने वाला (**अग्निः**) अग्नि (**ते**) तुम्हारा ही है। अर्थात्, तुम उसको पूर्ण रूप से जानते हो। (**यम्**) जिस अग्नि को (**द्वितीयेन वरेण**) दूसरे वर द्वारा (**अवृणीथाः**) तुमने चुना है या माँगा है, (**जनासः**) मनुष्य (**एतम् अग्निम्**) इस अग्नि को (**तव एव**) तुम्हारी ही, अर्थात् 'नचिकेता की अग्नि' के रूप में ही, (**प्रवक्ष्यन्ति**) कहेंगे। अब (**नचिकेतः**) हे नचिकेता! तुम (**तृतीयं वरम्**) तीसरा वर (**वृणीष्व**) चुन कर माँग लो'।"

Concluding his statement Yama said, "This heavenly Agni is yours, O Nachiketa, which you have selected and asked for in the from of the second boon. The people will henceforth call this Agni by your name. Now, you may select and ask for the promised third boon."

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये

अस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।

एतद् विद्याम् अनुशिष्टस्त्वयाऽहं

वराणामेष वरस्तृतीयः ॥२०॥

पदार्थ—उत्तर में नचिकेता बोला, "(**मनुष्ये प्रेते**) मनुष्य के इस संसार से विदा होने के बाद उसके विषय में (**या इयम्**) जो यह (**विचिकित्सा**) सन्देह बना रहता है कि (**एके अस्ति इति**) कुछ लोगों की दृष्टि में यह मृत्यु के बाद भी विद्यमान रहता है, (**एके**) कुछ लोगों की दृष्टि में (**न अस्ति इति**) यह विद्यमान नहीं रहता, (**अहम्**) मैं (**त्वया**) आपके द्वारा (**अनुशिष्टः**) अनुशासित या शिक्षित किया हुआ (**एतत्**) इस विषय में सत्य बात को (**विद्याम्**) जान पाऊँ या जान लूँ। (**एषः**) यह (**वरः**) वर या माँग (**वराणाम्**) आपके दिए तीन वरों में से (**तृतीयः**) तीसरा वर है, जिसे मैं माँग रहा हूँ।"

व्याख्या—इसमें तीसरे वर के रूप में नचिकेता ने, 'मृत्यु के बाद मनुष्य का क्या होता है ?', इस विषय में सत्य जानना चाहा है। उसने यम के सम्मुख विद्वानों के उन दोनों मतों की चर्चा की है, जिनमें से एक के अनुसार मृत्यु के बाद भी 'मनुष्य आत्मा के रूप में बचा रहता है', जबकि दूसरे के अनुसार 'मृत्यु के बाद वह शेष नहीं रहता'।

In reply to Yama's command, Nachiketa said, "There is doubt as regards to the continuity or otherwise of the soul of the Man, after he leaves this world due to the death. According to some it continues even after the death, while some others think in the opposite way. I pray thee for enlightening me in this regard. This I select as the third boon out of the three promised by you."

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा,
न हि सुज्ञेयमणुरेष धर्मः ।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व,
मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥२१॥

पदार्थ—यम ने उत्तर में कहा, "(**देवैः अपि**) देवताओं या दिव्यप्रतिभा वाले विद्वानों ने भी (**अत्र**) इस विषय में (**पुरा**) पहले (**विचिकित्सितम्**) शंका प्रकट की है। अर्थात्, वे भी सन्देह में रहे हैं। (**एष धर्मः**) यह धर्म की बात (**अणुः**) अत्यन्त सूक्ष्म है और (**न हि सुज्ञेयम्**) सरलता से जानने योग्य नहीं है। (**नचिकेतः**) हे नचिकेता, (**अन्यं वरम्**) किसी दूसरे वर को (**वृणीष्व**) चुन लो या माँग लो। (**माम् मा उपरोत्सीः**) इस विषय में सत्य समझाने के लिए मेरे रास्ते मत रोको। अर्थात्, मुझे इस बात का ज्ञान देने के लिए विवश मत करो। (**एनम् मा अतिसृज**) इस प्रश्न को तू मेरे लिए ही छोड़

दे। अर्थात्, इस प्रश्न या वर का सही उत्तर देने के उत्तरदायित्व से तू मुझे मुक्त कर दे।"

In reply Yama said, "Even in the old the divine or godly people had expressed doubts in this respect. This knowledge is very minute and, therefore, cannot be understood easily. O Nachiketa, you may ask for some other boon. Don't block my way or compel me in this regard. Set me free and unbounded from this particular boon."

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल,
त्वं च मृत्यो यन्न सुज्ञेयमात्थ।
वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो,
नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् ॥२२॥

पदार्थ—उत्तर में नचिकेता बोला, "(**अत्र**) इस विषय में (**देवैः अपि**) देवताओं ने भी (**पुरा**) पहले (**किल विचिकित्सितम्**) निश्चय ही सन्देह किया है। (**मृत्यो**) हे मृत्यु, (**त्वम् च**) और आपने भी (**यम्**) इस बात या ज्ञान को (**न सुज्ञेयम्**) सरलता से न जानने योग्य (**आत्थ**) कहा है। (**अस्य**) इस बात का (**त्वादृग्**) आप जैसा (**वक्ता**) बताने वाला (**अन्यः न लभ्यः**) अन्य कोई भी खोजा या पाया नहीं जा सकता। वास्तव में (**अन्यः**) दूसरा (**कश्चित्**) कोई भी (**वरः**) वर या माँग (**एतस्य**) इस वर के (**तुल्यः न**) तुल्य या समान नहीं है।"

Nachiketa replied. "As you have yourself stated that even the divine or godly ones have doubted in this regard

in the old and that this subject is very minute and difficult to be understood, and furthermore as no one else is ever to be found as capable a teacher of this subject as yourself, I don't find any other boon or demand being equal to the present one."

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व,
बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान् ।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व,
स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥२३॥

पदार्थ—यम ने फिरसे कहा, "(शतायुषः) सौ वर्ष की आयु तक जीने वाले (पुत्रपौत्रान्) बेटों और पोतों को, (बहून् पशून्) अनेकविध पशुओं को, (हस्तिहिरण्यम्) हाथी और सोने को, तथा (अश्वान्) घोड़ों को (वृणीष्व) चुन या माँग लो। अथवा, तुम (भूमेः) भूमि के (महत् आयतनम्) बड़े विस्तार को (वृणीष्व) चुन या माँग लो। (स्वयं च) स्वयं भी (यावत् इच्छसि) जब तक चाहते हो (शरदः) उतने वर्षों तक (जीव) दीर्घायु होकर जियो। अर्थात्, इस प्रश्न का उत्तर माँगने की अपेक्षा तुम इन सब सांसारिक सुखों को मुझ से माँग लो।"

Yama further said to him, "You better opt and ask for the sons and grandsons, living up to the full length of hundred years of your life, as also for the cattle in great numbers, alongwith gold, elephants and horses. You may also ask for the long stretches of land. Furthermore, you may opt for a longer life for your ownself, extending upto any number of years."

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं,
वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च।
महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि,
कामानां त्वा कामभाजं करोमि ॥२४॥

पदार्थ—यम ने फिर कहा, "(**यदि**) अगर (**एतत् वरम्**) इस वर को अपने पूर्वोक्त वर के (**तुल्यम्**) समान (**मन्यसे**) मानते हो, तब (**वित्तम्**) धन को (**चिरजीविकां च**) और सदा मिलती रहने वाली आजीविका को (**वृणीष्व**) अपने लिए चुन लो। (**नचिकेतः**) हे नचिकेता, (**त्वम्**) तुम (**महाभूमौ**) महान् भूमि पाकर उसमें (**एधि**) बढ़ो और फलो-फूलो। मैं (**त्वाम्**) तुम्हें (**कामानाम्**) समस्त काम्य इच्छाओं का (**कामभाजं**) पूरा फल पाने वाला (**करोमि**) बनाता हूँ।" अर्थात्, "मैं तुम्हारी समस्त सांसारिक इच्छाओं को पूरा होने का वरदान देता हूँ।"

He said to him further, "If you think this offer equal to the boon you have asked for, better you ask for vast riches and unending incomes. Nachiketa, may you cherish on the extant lands. I bless you that you may have all your desires fulfilled."

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके,
सर्वान् कामान् छन्दतः प्रार्थयस्व।
इमा रामाः सरथाः सतूर्याः,
न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः।
आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व,
नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः ॥२५॥

पदार्थ—"(**ये ये कामाः**) जो-जो भी कामनाएँ (**मर्त्यलोके**) मनुष्य जीवन में (**दुर्लभाः**) कठिनता से प्राप्य होती हैं, (**सर्वान्**) उन सब (**कामान्**) कामनाओं को (**छन्दतः**) मेरे द्वारा दिए गए वचन के बदले में या अपनी इच्छा के अनुरूप (**प्रार्थयस्व**) तुम माँग लो। (**इमाः**) ये जो (**रामाः**) स्त्रियाँ (**सरथाः**) रथों सहित और (**सतूर्याः**) गाजे-बाजों सहित हैं। (**ईदृशाः**) इस प्रकार की स्त्रियाँ (**मनुष्यैः**) सांसारिक मनुष्यों द्वारा (**न लम्भनीयाः**) पाने योग्य और आलिंगन करने योग्य नहीं हैं। (**आभिः**) ऐसी इन (**मत् प्रत्ताभिः**) मेरे द्वारा दी हुई स्त्रियों के साथ (**परिचारयस्व**) विहार और भोग करो। किन्तु, (**नचिकेतः**) हे नचिकेता, (**मरणम्**) मृत्यु और उसके बाद के विषय में (**मा अनुप्राक्षीः**) मत पूछो, या इस विषय में आग्रह मत करो।"

"And you can ask me for all those worldy desires, which are unattainable by the mortal ones in this world, in exchange for the promised third boon. The heavenly women like these, accompained by the chariots and the orchestra, etc., are not easily attainable and braceable by the men of this world. I give them to you. You enjoy them freely. But only, O Nachiketa, you do not ask me any further questions regarding the death or the state after that."

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्

सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।

अपि सर्वं जीवितमल्पमेव,

तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥२६॥

पदार्थ—उत्तर में नचिकेता ने कहा, "(**अन्तक**) हे जीवन का अन्त करने वाले यमराज, (**यत् एतत्**) यह जो कुछ भी आपने बताया, यह सब (**श्वोभावाः**) कल या कालान्तर में नष्ट हो जाने वाला है। ये सब चीजें (**मर्त्यस्य**) मरणधर्मा मनुष्य की (**सर्वेन्द्रियाणां तेजः**) सभी इन्द्रियों की

शक्ति या तेज को (**जरयन्ति**) क्षीण कर देती हैं। अर्थात्, ये सभी सांसारिक भोग इन्द्रियों को शक्तिहीन कर देते हैं। (**अपि**) फिर (**सर्वं जीवितम्**) सारा जीवन या आयु भी (**अल्पम् एव**) अत्यन्त छोटा या थोड़ा ही है। (**वाहाः**) रथ-घोड़े आदि भी (**तव एव**) तुम्हारे ही हैं। अर्थात्, इन सब को भी तुम अन्त में नष्ट कर देते हो। (**नृत्यगीते**) नृत्य और गीत आदि मनो-विनोद के साधन भी (**तव**) तुम्हारे ही हैं। अर्थात्, वे भी नश्वर हैं।"

Nachiketa replied, "O the End or Death, all these things recounted by you stay only for a while and destroy systematically the power and energy of all our senses. Life on the whole itself is very much limited and short. Even these chariots, alongwith the dancing and singing performances, belong in the end to you; all of them being destructible ones".

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो
लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वम्,
वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥२७॥

पदार्थ—"(**मनुष्यः**) मनुष्य (**वित्तेन**) धन के द्वारा (**तर्पणीयः न**) तृप्त या सन्तुष्ट नहीं किया जा सकता। (**चेत्**) यदि (**त्वा**) आपको (**अद्राक्ष्म**) हमने देख लिया, तब (**वित्तम्**) जानने और पाने योग्य सभी ज्ञान या धन आदि को (**लप्स्यामहे**) हम पा ही लेंगे। जहाँ तक जीने का प्रश्न है, (**यावत्**) जब तक (**त्वम्**) आप (**ईशिष्यसि**) स्वामी होने के नाते चाहोगे, तब तक ही (**जीविष्यामः**) हम जी ही लेंगे या उतना ही लम्बा जीवन पाएँगे। इसलिए इन वस्तुओं को न माँग कर (**मे**) मेरे लिए (**वरणीयः**) चाहने या माँगने योग्य (**वरः तु**) वर तो (**स एव**) वही है, जिसे मैंने आपसे तृतीय वर के रूप में पहले ही माँगा है।"

"The lust of a man can never be satisfied with the wealth. We shall get the riches also, if only we see and realize you first. Our life will also not last any longer than you wish or prescribe for. Therefore, I prefer and stick to the same querry, which I asked you for your promised third boon."

अजीर्यताममृतानामुपेत्य,
जीर्यन्मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन् ।
अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदान्
अतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥२८॥

पदार्थ—"(**क्वधःस्थः**), नीचे भूमि पर या मर्त्यलोक में रहने वाला (**जीर्यन्**) धीरे-धीरे विनष्ट होने वाला या बूढ़ा पड़ जाने वाला (**कः**) कौन (**मर्त्यः**) मरणधर्मा मनुष्य या साधक (**अजीर्यताम्**) कभी जीर्ण न होने वाले या बुढ़ापे से सताए न जाने वाले तथा (**अमृतानाम्**) कभी न मरने वाले या मृत्यु से भयग्रस्त न होने वाले परम ज्ञानियों आदि के (**उपेत्य**) सांनिध्य में आकर (**प्रजानन्**) जीवन के रहस्य या सत्य को जानता हुआ, या इन्हें जानने के बाद, (**वर्णरतिप्रमोदान्**) रंग, वासना और आमोद-प्रमोद की दुनिया या बातों को (**अभिध्यायन्**) विचारता हुआ, या उनका ही ध्यान करता हुआ, (**अतिदीर्घे**) बहुत लम्बी आयु तक रहने वाले (**जीविते**) जीवन में (**रमेत**) रमण करना चाहेगा ?" अर्थात्, 'अजरता-अमरता के रहस्य को जानकर कौन मरणशील मनुष्य सांसारिक सुखभोगों या दीर्घ आयु की कामना करेगा और उन्हें भोगना चाहेगा ?' कोई भी ऐसा नहीं चाहेगा।

"After coming into contact with and having knowledge of the secrets of ageless and deathless or immortal ones, whosoever mortal or earthly person would ever like

to enjoy a longer life, by engaging and drowning himself in the pleasures related with colour, sex or luxuries ? No one would ever like such a life any longer''

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो,
यत्साम्पराये महति ब्रूहिनस्तत् ।
योऽयंवरो गूढमनुप्रविष्टो,
नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥२६॥

पदार्थ—"(यस्मिन्) जिस (महति) महान् (साम्पराये) मृत्यु के बाद की स्थिति के विषय में, (मृत्यो) हे मृत्यु या यम, (यत्) जो (इदम्) इस प्रकार से (विचिकित्सन्ति) शंका या सन्देह लोग करते हैं, (तत्) उस सत्य को (नः) हमारे लिए (ब्रूहि) बताओ। (यः) जो (अयम्) यह (वरः) वर (गूढ़म्) अत्यन्त गहरे रूप से (अनुप्रविष्टः) रहस्य के रूप में प्रविष्ट हो चुका है, (तस्मात् अन्यम्) उसके अतिरिक्त किसी दूसरे वर को (नचिकेता) मैं नचिकेता (न वृणीते) वरण नहीं करना चाहता। अर्थात्, मैं केवल अपने माँगे तृतीय वर के विषय में ही जानना चाहता हूँ, जिसे तुमने अत्यन्त रहस्यमय बना दिया है।

"O death, the teacher, tell me about that great state after death, regarding which even the divine people have raised their doubts in the aforementioned way. I, Nachiketa, do not opt for any other demand or boon than this already expressed one, which now appears to have entered into a deeper mystery"

प्रथम अध्याय : द्वितीय वल्ली

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेय-
स्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः ।
तयोः श्रेय आददानस्य साधुर्भवति
हीयतेऽर्थाद् य उ प्रेयो वृणीते ॥१॥

पदार्थ—यम ने नचिकेता को फिर समझाना आरम्भ किया, ' (**श्रेयः, अन्यत्**) अधिक प्रशस्त या कल्याण करने वाला मार्ग भिन्न है। (**उत प्रेयः अन्यत् एव**) तथा प्रिय लगने वाला या प्रियकारी मार्ग उससे सर्वथा अलग ही है। (**ते उभे**) वे दोनों ही मार्ग (**नानार्थे**) भिन्न-भिन्न प्रयोजन को सिद्ध करने वाले हैं, तथा वे दोनों (**पुरुषम्**) पुरुष को (**सिनीतः**) बाँधने वाले हैं। किन्तु (**तयोः**) उन दोनों में से (**श्रेयः आददानस्य**) श्रेय और कल्याणकारी मार्ग को चुनने वाले का (**साधुः भवति**) कल्याण या भला होता है। दूसरी ओर, (**यः उ**) जो कोई भी (**प्रेयः**) प्रिय या आकर्षक पथ को (**वृणीते**) चुनता है, वह (**अर्थात्**) जीवन के मूल उद्देश्य से ही (**हीयते**) छूट जाता है या चूक जाता है''।

Yama started explaining further, "There are two distinct and separate ways, in which one can lead his life. One of them is known as that of 'Shreyas' or the path of welfare and the other one is known as 'Preyas' or the path of worldly attraction. Both serve the different purposes and tie down the man from all around. From amongst the two, whosoever selects the first path, it serves him good. The

one, who opts for the other one, loses the very purpose of the life".

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत-
स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः ।
श्रेयो हि धीरो अभिप्रेयसो वृणीते,
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥२॥

पदार्थ—"(श्रेयः च प्रेयः च) श्रेय और प्रेय दोनों ही (मनुष्यम्) मनुष्य को (एतः) प्राप्त होते हैं। (तौ) उन दोनों को (सम्परीत्य) भली प्रकार से जान-पहचान कर (धीरः) बुद्धिमान् और कर्मशील मनुष्य (विविनक्ति) उनका विवेचन और चुनाव करता है। (धीरः) कर्मशील और बुद्धिमान् व्यक्ति (प्रेयसः अभि) प्रेयस् से भी अधिक (श्रेयः) श्रेयस् के मार्ग को (वृणीते) वरण करता है। किन्तु (योगक्षेमात् मन्दः) योगक्षेम की दृष्टि से रहित या भाग्यहीन व्यक्ति (प्रेयः वृणीते) सांसारिक प्रलोभनों और आनन्द के मार्ग को (वृणीते) चुनता या अपनाता है।"

"A man gets naturally the 'Shreyas' and 'Preyas' both. But the wise one examimes them critically and minutely. These wise people select the path of Shreyas for themselves rather then that of Preyas, which in its own turn is selected by those, who are devoid of, or weaker in, their spiritual and physical well-being".

स त्वं प्रियं प्रियरूपाँश्च कामा-
नभिध्यान्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ।

नैतां सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो
यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ॥३॥

पदार्थ—"(**नचिकेतः**) हे नचिकेता,(**स त्वम्**)ऐसे तुमने (**प्रियम्**) प्रिय व्यक्तियों और वस्तुओं को (**प्रियरूपान् कामान् च**) एवं प्रिय लगने वाली इच्छाओं और कामनाओं को (**अभिध्यायन्**) भली प्रकार पहचान कर भी (**अत्यस्राक्षीः**) सर्वथा त्याग दिया है। (**न**) न ही तुम (**एतां वित्तमयीं सृङ्काम्**) इस सम्पति वाले सरिता या मार्ग, अथवा सम्पति की माला, को ही (**अवाप्तः**) प्राप्त कर पाए हो। अर्थात्, तुम इस सरिता या मार्ग तक भी जाने को उत्सुक नहीं हुए हो, (**यस्याम्**) जिसमें (**बहवः मनुष्याः**) अधिकांश मनुष्य (**मज्जन्ति**) डूब जाते हैं।"

"O Nachiketa, you have left aside and neglected all the beloved ones as well as the lovable worldy desires, after weighing them considerably. Nor you have preferred to select the way leading towards riches, which submerge and detract many a people within themselves".

दूरमेते विपरीते विषूची,
अविद्या या च विद्येति ज्ञाता।
विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये
न त्वा कामा बहवो अलोलुपन्त ॥४॥

पदार्थ—"(**या**) जो (**विद्या अविद्या इति च**) विद्या और अविद्या के रूप में या इन दोनों नामों से (**ज्ञाता**) जानी जाती हैं, (**एते**) ये दोनों ही (**दूरम्**) अत्यधिक (**विपरीते**) एक-दूसरे से विपरीत स्वभाव की हैं, तथा

(विसूची) विपरीत दिशा में गति करने वाली है। **(नचिकेतसम्)** तुझ नचिकेता को मैं **(विद्याभीप्सिनम्)** इन दोनों में से **'विद्या'** को चाहने वाला ही **(मन्ये)** मानता हूँ। इसीलिए **(त्वा)** तुम्हें **(बहवः)** बहुत-सी या अधिकता की भावना से भरी **(कामाः)** इच्छाएँ **(न अलोलुपन्त)** अपनी ओर लुभा नहीं सकीं।"

"There are two kinds of knowledgeables, known as Vidva and Avidya, respectively. Both are quite divergent and both lead in quite opposite directions. I take you as the lover of the path of Vidya. It is only because of this fact that these many and multifarious worldly desires or attractions could in noway detract you".

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः ।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढाः,
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥५॥

पदार्थ—"**(अविद्यायाम् अन्तरे)** अविद्या के घेरे में या उसके चक्कर में **(वर्तमानाः)** विद्यमान या पड़े हुए **(स्वयम्)** अपने आपको **(धीराः)** बुद्धिमान् और कर्मशील एवं **(पण्डितं मन्यमानाः)** पण्डित के रूप में समझने वाले **(मूढाः)** मूर्ख या बुद्धि के व्यामोह में पड़े लोग **(दन्द्रम्यमाणाः)** भटकते हुए या कुटिलतामय आचरण करते हुए **(परियन्ति)** चारों ओर इस प्रकार भटकते रहते हैं, **(यथा)** जिस प्रकार **(अन्धाः)** अन्धे लोग **(अन्धेन एव)** अन्धे के ही द्वारा **(नीयमानाः)** ले जाए जाते हुए भटकते रहते हैं।"

"The fools or bewildered ones remain constantly

on the path of unknowledgeable things and think themselves to be wise and scholarly. They wander aimlessly hither and thither or all-around, as if the blinds were being led by the blinds themselves".

न साम्परायः प्रतिभाति बालं,
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् ।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी
पुनः पुनर्वशतामापद्यते मे ॥६॥

पदार्थ––यम ने मूढ़ जनों की बात समझाते हुए कहा, "(**प्रमाद्यन्तम्**) प्रमाद या आलस्य करने वाले, (**वित्तमोहेन मूढम्**) धन सम्पत्ति के आकर्षण से मूढ़ बने हुए, एवं (**बालम्**) वालक के समान अज्ञानी बने हुए या मूर्ख व्यक्ति को (**साम्परायः**) मृत्यु के बाद की स्थिति (**न प्रतिभाति**) आभासित या प्रतीत नहीं हो पाती । अर्थात्, ऐसा व्यक्ति मृत्यु के बाद की स्थिति के वारे में न तो रुचि लेता है, न ही चाहकर भी उसे जान ही सकता है। वह तो (**मानी**) यह मानता रहता है कि (**अयं लोकः**) दृश्यमान यह संसारमात्र ही सत्य है, अथवा यही सब कुछ है; (**न परः इति**) इसके बाद या अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। इसी कारण मृत्यु के बाद की स्थिति पर विचार न कर पाने वाला या उस विषय में अज्ञानी बना रहने वाला-वह व्यक्ति (**पुनः पुनः**) बार-बार (**मे वशम् आपद्यते**) मेरे वश में आ पड़ता है। अर्थात्, ऐसा व्यक्ति मृत्यु के रहस्य को न जान पाने के कारण जन्म-मरण के चक्र में ही पड़ा रहता है।"

"As the querry, regarding the knwledge of the life after death, does not attract the attention of fools, who are negligent and are spoiled by the wealth, and who

believe in the reality of this present or existing world, discarding any possibility regarding any life after death, they come into my grip or fall in my trap again and again, which is constantly moving in the form of a wheel of life and death.

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः,
शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः ।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य, लब्धाऽऽ-
श्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥७॥

पदार्थ—"(**यः**) जो मृत्यूत्तर-स्थिति-सम्बन्धी ज्ञान (**बहुभिः**) बहुत से मनुष्यों द्वारा (**श्रवणाय अपि**) सुनने तक के लिए भी (**न लभ्यः**) उपलभ्य नहीं हो पाता, तथा (**यम्**) जिसे (**शृण्वन्तः अपि**) सुनने पर भी (**बहवः**) बहुत से लोग (**न विद्युः**) सही प्रकार से जान नहीं पाते, (**अस्य**) उस ज्ञान का (**वक्ता**) बखान या व्याख्या करने वाला (**आश्चर्यः**) आश्चर्य से ही उपलब्ध होता है। अर्थात्, ऐसे वक्ता का मिलना आश्चर्यजनक ही होता है; क्योंकि इसके ज्ञाता बहुत ही कम मिलते हैं। अतः (**अस्य**) इस ज्ञान का (**लब्धा**) पा लेने वाला या इसका उपदेश समझ पाने वाला (**कुशलः**) कोई चतुर और कुशल व्यक्ति ही हो सकता है। (**अस्य**) इस ज्ञान का (**ज्ञाता**) जानने वाला तो (**आश्चर्यः**) आश्चर्य से ही मिलता है। अतः (**अनुशिष्टः**) शिष्य बनकर विधिवत् शिक्षित व्यवित तो (**कुशलः**) कोई कुशल या चतुर व्यक्ति ही हो सकता है। अर्थात्, जब इसके वक्ता और ज्ञाता ही मिलने कठिन हैं, तब उनसे इस ज्ञान की उपलब्धि पाने वाले मिलने तो और भी कठिन हैं।"

"The knowledge about which state is a rare one for

many, even for listening, and which remains unintelligible for many even after listening; it is only by surprising chance that we get a teacher and scholar of that knowledge; not to say of the listeners and disciples of such a knowledge, who must be very apt and attentive to have any success in their aim".

न नरेणावरेण प्रोक्त एष
सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः ।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र ना-
स्त्यणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ॥८॥

पदार्थ—"(एषः) मृत्यु के पहले और बाद का इसका स्वरूप (अवरेण) साधारण अथवा निम्नकोटि के (नरेण) मनुष्य के द्वारा (प्रोक्तः) बताए जाने पर और (बहुधा चिन्त्यमानः) अनेक प्रकार से विचारे जाने पर भी (सुविज्ञेयः न) सरलता से समझ में नहीं आता। यह तत्त्व अपने स्वरूप में (अणीयान्) अणु से भी सूक्ष्म है एवं (अणुप्रमाणात्) इसी अणुसदृश सूक्ष्मता के कारण (अतर्क्यम्) चिन्तन या तर्क की सीमा से परे है। इसीलिए (अनन्यप्रोक्ते) किसी गुरु आदि विद्वज्जन के बिना समझाए (अत्र) इस विषय में (गतिः नास्ति) ज्ञान भी प्राप्त नहीं हो सकता।"

"It does not become easily comprehensible, even after repetitive consideration, when taught by a second-class or below-standard teacher. It is very minute, like an atom. Because of that minuteness, it is not comprehensible even by logic. There is no other way left in this matter, if a well-versed teacher does not explain its reality."

नैषा तर्केण मतिरापनेया
प्रोक्ताऽन्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ ।
यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि,
तादृङ् नो भूयान् नचिकेतः प्रष्टा ॥६॥

पदार्थ—"(**प्रेष्ठ**) हे सर्वाधिक प्रिय ! (**एषा मतिः**) इस पूर्वोक्त प्रकार की बुद्धि (**तर्केण**) तर्क के द्वारा (**न आपनेया**) प्राप्त नहीं की जा सकती। अर्थात्, केवल स्वयं शंकासमाधान की शैली में विचार करके हम ऊपर कही विचारणीय बातों को नहीं जान सकते। (**अन्येन एव**) किसी अन्य गुरुजन आदि के द्वारा ही (**प्रोक्ता**) समझाई या बताई गई वह ऐसी मति (**सुज्ञानाय**) वास्तविक ज्ञान को देने वाली या भली प्रकार ग्रहण की जाने योग्य होती है, (**याम्**) जिस मति या ज्ञान को (**त्वम्**) तुमने (**आपः**) प्राप्त कर लिया है। (**बत**) यह प्रसन्नता की बात है कि (**त्वम्**) तुम (**सत्यधृतिः**) वास्तविक धैर्य रखने वाले(**असि**)हो (**नचिकेतः**) हे नचिकेता, (**त्वादृक्**) तुम्हारे सदृश (**प्रष्टा**) प्रश्न पूछने वाला व्यक्ति या जिज्ञासु (**भूयान् नो**) फिर मिलने वाला नहीं है।"

"O dearest one, such a knowledge cannot be attained through logic only. Only when taught by someone else, it becomes easily understandable. And you have already attained this. Fortunately and truly you are steadfast on the path of this true knowledge. Nachiketa, no one else is going to ask me the same question like you. I do not comprehend to meet any such questioner again."

जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यं
न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत् ।

ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्नि-
रनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् ॥१०॥

पदार्थ—"(**अहम्**) मैं (**जानामि**) यह बात जानता हूं कि (**शेवधिः**) सुख देने वाली सभी सम्पदाएँ (**अनित्यम् इति**) नष्ट होने वाली अथवा नित्य न बनी रहने वाली हैं। (**हि**) और यह बात सच है कि (**अध्रुवैः**) नाशवान् और सदा स्थिर **न** रहने वाली वस्तुओं के सहारे से (**ततः**) उस (**ध्रुवः**) सदा स्थायी रहने वाले सुख या नित्य तत्त्व को (**न प्राप्यते**) नहीं प्राप्त किया जा सकता। (**ततः**) इस सत्य को जानने के कारण ही (**अयं नाचिकेतः अग्नि**) इस नाचिकेत अग्नि को (**मया**) स्वयं मैंने भी (**चितः**) चयन या संधान किया है। और इस प्रकार(**अनित्यैः द्रव्यैः**)अनित्य साधनों या द्रव्यों के माध्यम से (**नित्यम्**) उस नित्य या सत्य तत्त्व को (**प्राप्तवान् अस्मि**) मैं पा चुका हूं।"

टिप्पणी—अनित्य होते हुए भी नाचिकेत अग्नि नित्य आत्मा का ज्ञान देने में समर्थ होता है।

"I know the fact that the pleasure-giving wealth or riches do not last for ever. I also know that the Eternal element can never be attained through the unstable or non-lasting medium. It is therefore that I have myself adopted and kindled methodically this very same Agni, which I have named now after you, and have thus become capable of getting to that eternal element through this non-eternal medium."

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां
क्रतोरानन्त्यमभयस्य पारम्।

स्तोमं महद् उरुगायं प्रतिष्ठां
दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ।।११।।

पदार्थ—"(**नचिकेतः**) हे नचिकेता, तुमने (**कामस्य आप्तिम्**) कामनाओं के द्वारा उपलभ्य अन्तिम सत्य, (**जगतः प्रतिष्ठाम्**) गतिशील संसार की स्थिरता के वास्तविक आधार, (**क्रतोः आनन्त्यम्**) यज्ञमय कर्मों की अनन्तता, (**अभयस्य पारम्**) भय से निश्चिन्तता की वास्तविकता या चरम सीमा, तथा (**स्तोमम्**) स्तुतियोग्य (**महत्**) महत्ता और विस्तार से युक्त (**उरुगायम्**) अत्यन्त असीम गति वाले अथवा सबके द्वारा स्तुतिगान किये जाने वाले (**प्रतिष्ठाम्**) इस जगत् या जीवन की स्थिरता के कारणरूप उस परम आत्मा ब्रह्म को (**दृष्ट्वा**) देख और जानकर ही (**धीरः**) बुद्धिमान् और कर्मशील तुमने मेरे द्वारा वरदान रूप में अर्पित सभी सांसारिक उपलब्धियों को (**अति अस्राक्षीः**) त्याग दिया है। अर्थात्, तुमने इस जगत् में स्थायी और नित्य परम ब्रह्म को पहचानने के कारण ही पहले कही सभी सांसारिक वस्तुओं की अनित्यता को पहचान लिया और इसीलिए उनको ग्रहण नहीं किया।"

व्याख्या—यहाँ संकेत के रूप में यम ने नचिकेता को बता दिया है कि "तुम इस अनित्य संसार में जानने योग्य एकमात्र परम सत्य और नित्य तत्त्व को पहले ही जान चुके हो। इसीलिए तुमने 'अनित्य' तत्त्व को त्याग कर 'नित्य' तत्त्व के बारे में पूछना उचित समझा है।"

"O Nachiketa, you were wise enough in rejecting all the worldly pleasures already offered by me, because you have seen through the reality of that eternal element, which is the ultimate limit of one's desires and expectations, the sole stablizing factor of this moving universe,

the only cause of unending continuity of Yajna or sacrificial act, the ultimate limit of the fearlessness, and which is also the only praiseworthy, great, all-pervading, uninterruptedly moving, as well as the sole stablizing factor for all the life."

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् ।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ।

पदार्थ—"तुम्हारी ही तरह जो व्यक्ति (**धीरः**) बुद्धिमान् और कर्मशील होता है, वह (**तम्**) उस (**दुर्दर्शम्**) कठिनता से देखने या जानने योग्य (**गूढम्**) इन चक्षुओं या इन्द्रियों की पहुँच से बहुत दूर या छिपकर (**अनुप्रविष्टम्**) घुसे हुए या स्थित, (**गुहाहितम्**) हृदय या ज्ञान की गहराई में स्थित, (**गह्रेष्ठम्**) सृष्टि के समस्त अन्तरालों या रिक्त स्थानों तक में व्याप्त (**पुराणम्**) सभी उत्पन्न और ज्ञात वस्तुओं या तत्त्वों से भी प्राचीन, (**देवम्**) समस्त दिव्य शक्तियों के प्रेरक स्रोत उस दीप्तिमान् आत्मा या ब्रह्म को (**अध्यात्मयोगाधिगमेन**) आत्मा को आधार बनाकर किये जाने वाले योग की उपलब्धि और उपाय द्वारा (**मत्वा**) जानकर या पहचानकर (**हर्षशोकौ**) सांसारिक बातों से उत्पन्न होने वाले हर्ष और शोक को (**जहाति**) छोड़ देता है। अर्थात्, उस परम तत्त्व को जानकर बुद्धिमान् मनुष्य सांसारिक हर्ष-शोक से ऊपर उठ जाता है।"

"Any wise and dutiful person llke you can also become capable of leaving aside the feelings of worldly pleasures and sorrows, after knowing the same Divine Supreme, who is rarely visible, deeply hidden, living in the cavity of heart or of knowledge, filling all the void,

and is the oldest of all the known elements."

एतच्छ्रुत्वा संपरिगृह्य मर्त्यः प्रबृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य ।
स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा, विवृतं सद्म नचिकेतसं मन्ये ॥

पदार्थ—(**सः**) वह (**मर्त्यः**) मरणधर्या मनुष्य (**एतत्**) इस परम अविनाशी नित्य तत्त्व के विषय में (**श्रुत्वा**) जानकर, (**संपरिगृह्य**) पूरी तरह समझकर और (**प्रबृह्य**) भली प्रकार उसका विस्तृत ज्ञान पाकर तथा (**अणुम्**) सूक्ष्मातिसूक्ष्म (**धर्म्यम्**) धर्माचरण से उपलभ्य या एकमात्र धारण करने योग्य (**एतम्**) इस आत्मा या ब्रह्म-तत्त्व को (**आप्य**) पाकर या जानकर, तथा साथ ही इस ज्ञान के द्वारा (**मोदनीयं हि लब्ध्वा**) आनन्द प्रदान करने वाले या परम आनन्द को भोगने वाले उस तत्त्व को पाकर, (**मोदते**) सदा आनन्द में रहने लगता है। हे नचिकेता, (**नचिकेतसम्**) तेरे लिए (**सद्म**) वह घर या उसका द्वार (**विवृतम्**) खुला हुआ है, (**मन्ये**) मैं ऐसा मानता हूं। अर्थात्, मेरी समझ में तुम्हें उस परम आनन्द के स्रोत की उपलब्धि पहले ही हो चुकी है।"

"O Nachiketa, the man enjoys immortal pleasures, only after listening, understanding and expanding the knowledge about this very immortal element, as also after attaining that minutest all-bearing knowldegeable element, which is the etenal source of all the pleasures. In my opinion, the doors of that house are already open to you, O Nachiketa."

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात् ।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्पश्यसि तद् वद ॥१४॥

पदार्थ—नचिकेता ने प्रत्युत्तर में कहा, "(**धर्मात्**) मनुष्य द्वारा आचरणीय कर्त्तव्य या धर्म से (**अन्यत्र**) अलग, (**अधर्मात्**) अकरणीय कर्मों या अधर्म से भी (**अन्यत्र**) अलग, (**अस्मात् कृताकृतात्**) हमारे द्वारा किए हुए इन कर्मों और न किये हुए कर्मों की पहुंच से भी अलग, तथा (**भूताच्च भव्याच्च अन्यत्र**) अतीत और भविष्य की पहुँच से भी अछूत होकर स्थित (**यत्**) जिस तत्त्व को (**पश्यसि**) आप देखते और समझते हो, (**तत्**) उसके विषय में ही (**वद**) मुझे बताइए।"

Nachiketa replied, "Tell us about that ultimate reality, which you percieve as distinctly separate from Dharma and Adharma, unaffected by our done and undone acts, as also separated from all that was in the past and will be in the future."

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ।।

पदार्थ—उत्तर में यम ने कहा, "हे नचिकेता, (**सर्वे वेदाः**) सारे वेद (**यत् पदम्**) जगत् के जिस आधारभूत परम पद का (**आमनन्ति**) वर्णन, विचार या चिन्तन करते हैं। (**सर्वाणि तपांसि च**) तथा सब प्रकार के तप और श्रम (**यत् वदन्ति**) जिस तत्त्व की ओर इंगित करते हैं, या जिसका वर्णन करते हैं। तथा (**यत्इच्छन्तः**) जिसकी कामना करते हुए साधक लोग (**ब्रह्मचर्यं चरन्ति**) ब्रह्मचर्य की साधना करते हैं, या वेदादि के स्वाध्याय में यत्न करते हैं, (**तत् पदम्**) जगत् के आधारभूत उसी पद को (**ते**) तुम्हारे लिए (**संग्रहेण**) संक्षिप्त और समग्र रूप में (**प्रवक्ष्ये**) अब मैं बताऊँगा।"

In reply to Nachiketa's request, Yama said, "Now I

shall explain that stage of ultimate reality to you, which is the focal point of consideration for all the Vedas, only to attain which all kinds of penances are made, and aiming at which people lead the life of Brahmacharya in a sanctified way."

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥१६॥

पदार्थ—"(एतत् एव हि) यह पद ही (अक्षरम्) कभी क्षीण या नष्ट न होने वाला (ब्रह्म) परम बृंहणशील या विस्तारमय ब्रह्म है। (एतत् हि एव) यह पद ही (परम् अक्षरम्) सबसे उत्कृष्ट अविनश्वर तत्त्व है। (एतत् हि अक्षरम्) इसी अविनश्वर तत्त्व को (ज्ञात्वा एव) जानकर ही (यः) जो भी व्यक्ति (यत्) जिस भी वस्तु को (इच्छति) चाहता है, (तस्य) उसको ही (तत्) वह वस्तु उपलब्ध हो जाती है।"

"This very stage is essentially that of indestructible and ever-expanding Brahman. This stage itself is the indestructible and ultimate element. Only after knowing this immortal or indestructible element, one can attain anything according to his own desires."

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥१७॥

पदार्थ—(एतद् आलम्बनम्) आश्रयभूत यह तत्त्व ही (श्रेष्ठम्)

सर्वाधिक प्रशंसनीय है। **(एतद् आलम्बनम्)** यह आश्रयभूत तत्त्व ही **(परम्)** उपलब्धि की सर्वोच्च या अन्तिम सीमा है। **(एतद् आलम्बनम्)** सहारे या आश्रय के रूप में स्थित इस तत्त्व को **(ज्ञात्वा)** जानकर ही कोई भी साधक **(ब्रह्मलोके)** वेद या ज्ञान के द्वारा ज्ञेय ब्रह्म को जानकर ब्रह्ममय स्थिति में या ब्रह्मलोक में **(महीयते)** सुख और महिमा को अनुभव कर सकता है।"

टिप्पणी—यहाँ 'ब्रह्मलोक' का अर्थ स्पष्ट हो जाता है : 'ब्रह्मतत्त्व में रमने की स्थिति' या 'ब्रह्म के ज्ञान की स्थिति'। इसका यह अर्थ भी है : 'वेद या ज्ञान के द्वारा उपलभ्य स्थिति'।

"This very foundation or support of the universe is most praiseworthy. It is itself situated as the last limit of attainment. Only after knowing this supporting base, one can enjoy and relish the grace of Brahman, which is realizable only through the knowledge of the Vedas."

न जायते म्रियते वा विपश्चि-
न्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥१८॥

पदार्थ—"**(विपश्चित्)** तत्त्व या वास्तविकता को जानने वाला आत्मा **(न जायते म्रियते वा)** न तो कभी जन्म ही लेता है और न कभी मरता या नष्ट ही होता है। **(अयम्)** यह आत्मा **(न कुतश्चित् बभूव)** न तो माता-पितादि किसी अन्य कारण से उत्पन्न होता है, और **(न कश्चित्)** न ही यह

किसी दिखाई देने वाले व्यक्ति का रूप धारण करता है। अर्थात्, जिसका जन्म होता है और जो 'व्यक्ति' के रूप में समझने आता है, वह 'आत्मा' नहीं होता। (**अयम्**) यह आत्मा तो (**अजः**) कभी जन्म नहीं लेता, (**नित्यः**) नित्य रहता है, (**शाश्वतः**) सदा निरन्तर रहने वाला है, और (**पुराणः**) सबसे प्राचीन अथवा नित्य नवीन रहने वाला है। यह आत्मा (**हन्यमाने शरीरे**) मारे जाते हुए शरीर में भी (**न हन्यते**) मारा नहीं जाता। अर्थात्, शरीर के मारे जाने पर भी यह बचा ही रहता है।"

"The truth-knowing Self knows this fact that neither does he take any birth, nor does he die. Neither he is caused by someone, nor he becomes someone. He is, thus, birthless, eternal, continuous and the oldest of all. He never dies in a dying body." In other words, only the body takes birth or meets with its death. The soul remains aloof from these events and, therefore, remains continuous and immortal.

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं, हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥१६॥

पदार्थ—"(**चेत्**) यदि (**हन्ता**) किसी अन्य व्यक्ति को मारने वाला व्यक्ति (**हन्तुम्**) अपने आत्मा को मारने वाले के रूप में (**मन्यते**) समझता है, (**चेत्**) और यदि (**हतः**) आक्रमण या चोट खाया हुआ व्यक्ति (**हतम्**) अपने आत्मा को मार या चोट खाये हुए के रूप में (**मन्यते**) समझता है, तब (**तौ उभौ**) वे दोनों ही (**न विजानीतः**) यह सत्य नहीं जानते कि (**अयम्**) यह आत्मा (**न हन्ति**) न तो किसी को मारता ही है और (**न हन्यते**) न किसी के द्वारा मारा या मिटाया ही जाता है।"

"If the slayer thinks that his soul is the real slayer, and the slain or beaten one thinks his soul has been beaten or killed, they both do not know this truth that neither this soul slays anyone else, nor it is slain by any one else."

अणोरणीयान्महतो महीयान्,
आत्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥२०॥

पदार्थ—"(**अणोः अणीयान्**) अणु से भी सूक्ष्मतर एवं (**महतः महीयान्**) बड़े से भी बड़ा (**आत्मा**) आत्मा (**अस्य जन्तोः**) इस शरीरधारी प्राणी के (**गुहायाम्**) शरीर या हृदय के अन्दर ही (**निहितः**) निहित या स्थित रहता है। (**वीतशोकः**) शोक की पहुँचे से ऊपर उठा हुआ एवं (**अक्रतुः**) कर्तव्य कर्मों के बन्धन से रहित हो जाने वाला व्यक्ति ही (**धातुः**) विश्व को धारण करने वाले ब्रह्म की (**प्रसादात्**) कृपा से (**आत्मनः**) आत्मा की (**तम् महिमानम्**) उस महिमा को (**पश्यति**) देख पाता है।"

"Being minuter than even the atom and greater than even the greatest, the soul or Self lives within the cavity of the heart of this living creature. That greatness of the Self can be seen by the grace of God, only by a person who has been left with no duties to be performed inevitably and who has gone beyond the reach of sorrows."

आसीनो दूरं व्रजति, शयानो याति सर्वतः।
कस्तं मदामदं देवं, मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥२१॥

पदार्थ—"जो देव (**आसीनः**) एक ही जगह स्थिर रह कर भी (**दूरं व्रजति**) दूर-दूर तक जाता है और जो (**शयानः**) सोता हुआ भी (**सर्वतः**) सब ओर (**याति**) जाता है (**तम्**) उस (**मदामदम्**) सदा आनन्दमय होने पर भी मद में न आने वाले (**देवम्**) दिव्यशक्तियों के स्रोत देव को (**मत् अन्यः**) मेरे अतिरिक्त कौन अन्य (**ज्ञातुम् अर्हति**) जानने में समर्थ हो सकता है ?"

"Who else than myself can come to know that Divine Supreme, who wanders to the farthest limits while remaining stationary, who moves all-arround while sleeping, and who is the Supreme Bliss Himself."

अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥२२॥

पदार्थ—"(**शरीरेषु**) नष्ट या क्षीण होने वाले अथवा शरीरवान् प्राणियों के भीतर रहकर भी जो (**अशरीरम्**) नष्ट या क्षीण होने वाला नहीं है,(**अनवस्थेषु**) कभी स्थिर न रहने वालों में रहकर भी जो (**अवस्थितम्**) सदा उसी रूप में स्थिर रहने वाला है, जो (**महान्तम्**) महान् है, तथा जो (**विभुम्**) सर्वत्र व्यापक है, ऐसे (**आत्मानम्**) आत्मा को (**मत्वा**) देखकर या जानकर (**धीरः**) बुद्धिमान् या कर्मशील व्यक्ति (**न शोचति**) कभी शोक अनुभव नहीं करता ।"

"The wise or the dutiful ones never feel sorrow, after they come to know the reality about the greatest and all pervading Self, who does never whither while remaining in the whithering bodies and who remains steady while remaining in the unsteady ones."

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ॥२३॥

पदार्थ—"(अयम्) यह (आत्मा) आत्मा (प्रवचनेन, मेधया, बहुना श्रुतेन) उपदेश से, बुद्धि के द्वारा, अथवा वहुत अधिक ज्ञान के माध्यम से (न लभ्यः) प्राप्त या उपलभ्य नहीं है। (एषः) यह आत्मा (यम्) जिस साधक को (एव) ही (वृणुते) सच्चा समझकर साधक के रूप में चुन लेता है, (तेन) उस साधक के द्वारा ही यह आत्मा (लभ्यः) सच्चे रूप में जाना और पाया जा सकता है। (एष आत्मा) यह आत्मा (तस्य) उसके लिए (स्वां तनुम्) अपने सूक्ष्म रूप को (विवृणुते) प्रकट रूप से स्पष्ट कर देता है।"

"The reality of this Self cannot be understood or realized either through sermons, meditating mind, or intensified knowledge alone. It glorifies or magnifies its own real form only before them, to whom it selects. Only these persons succeed in getting to its reality."

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥२४॥

पदार्थ—"(दुश्चरितात्) बुरे कर्म करने से (अविरतः) जो रुक नहीं पाया है, (अशान्तः) जो शान्त नहीं बन पाया है, (असमाहितः) जिसका चित्त स्थिर और केन्द्रित नहीं हो सका है, तथा (अशान्तमानसः) जिसका

मन शान्त नहीं हो सका है, उनमें से कोई भी व्यक्ति (**प्रज्ञानेन एव**) केवल ज्ञान की अधिकता के द्वारा ही (**एनम्**) इस आत्मा को (**न आप्नुयात्**) प्राप्त नहीं कर सकता।"

"The people who have not stopped from treading the sinful path, or are restless or unconcentrated, or have unpeaceful mind, cannot realize this Self even through the pursuit of pure or specialized knowledge."

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः ।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ।।२५।।

पदार्थ—"(**यस्य**) जिस आत्मा के (**ब्रह्म च क्षत्रं च**) ज्ञान और रक्षा (**उभे**) दोनों प्रकार के सामर्थ्य ही (**ओदनः**) भोगने योग्य पदार्थ के रूप में (**भवतः**) होते हैं, और (**मृत्युः**) मृत्यु (**यस्य**) जिसकी (**उपसेचनम्**) पुष्टि का साधन बनती है, ऐसा (**सः**) वह आत्मा (**यत्र**) जहाँ रहता है, (**इत्था**) उस स्थान को निश्चयपूर्वक (**कः वेद**) कौन जानता है ?"

"Who knows that place where lives that soul or Self, which feeds upon both the forces of knowledge and protection and which thrives upon the death ?"

प्रथम अध्याय : तृतीय वल्ली

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके,
गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे ।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति
पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ।।१।।

पदार्थ—"(**पञ्चाग्नयः**) पाचों प्रकार की गार्ह्यपत्यादि अग्नियों का विधिवत् सेवन करने वाले, या पाँचों प्रकार के यज्ञों को अग्निचयन के साथ सम्पादन करने वाले (**ब्रह्मविदः**) ब्रह्म को जान लेने वाले या वेदज्ञानी लोग, (**ये च**) और जो लोग (**त्रिणाचिकेताः**) तीन बार या तीन प्रकार से नाचिकेत अग्नि का सन्धान या चयन कर चुके हैं, ऐसे लोग (**परमे परार्धे**) अन्तिम सीमा के रूप स्थित **परार्ध** नामक द्युलोक में अथवा परम व्यपक हृदय-रूपी आकाश में स्थित (**सुकृतस्य लोके**) पुण्य-कर्मों द्वारा उपलभ्य लोक में या स्थिति में (**गुहाम्**) बुद्धिरूपी गुहा में (**प्रविष्टौ**) प्रविष्ट होकर स्थित एवं (**ऋतं पिबन्तौ**) ऋत या सत्य का अनुभव करते हुए या ऋत का सन्धान करते हुए (**छायातपौ**) अन्धकार और प्रकाश की भाँति क्रमशः अज्ञान और ज्ञान से सम्पन्न जीवात्मा और परमात्मा के रूप में विभक्त ब्रह्म को (**वदन्ति**) बताते हैं।"

व्याख्या—यह सत्य पञ्चाग्नि के साधक एवं नाचिकेताग्नि के साधक ही जान और बता सकते हैं कि **छाया** और **प्रकाश** के रूप में परम ब्रह्म के ही दो अंश इस इस विषय में सदा सत्य और ऋत का सन्धान करते हुए चलते हैं तथा सर्वोच्च रूप में स्थित होकर वे ही केवल पुण्यात्माओं द्वारा द्रष्टव्य होते हैं।

"Those, who have come to know and have thereby employed the five kinds of Agni, and those, who have kindled Nachiketa Agni in three ways or three times, tell us after experiencing that Supreme Self or ultimate reality themselves, that there are two aspects of the same Self, living inseparably together like the Shadow and the Sunlight, in the form of Individual Self and Supreme Self, both of which always devour the truth and remain hidden in a cavity situated in the worlds, attainable

only by the virtuous people, and are situated in the innermost heart or in the farthest heavens.

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम् ।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतं शकेमहि ।।२।।

पदार्थ—"(ईजानानाम्) यज्ञ करने वाले यजमानों का (**यः**) जो (**सेतुः**) पार ले जाने वाला माध्यम है, और (**यत्**) जो (**अक्षरं परं ब्रह्म**) कभी क्षरण या क्षीण न होने वाला परम ब्रह्म है, तथा जो (**पारं तितीर्षताम्**) इस संसार सागर से पार जाना चाहने वालों के लिए (**अभयेम्**) अभय प्रदान करने वाला है, ऐसे (**नाचिकेतम्**) नाचिकेत अग्नि द्वारा जानने या पाए जाने योग्य परम आत्मा को हम (**शकेमहि**) पाने या जानने में समर्थ हो सकें।"

"May we suceed in getting to that element, which is the ultimate aim of Nachiketa Agni, which acts as a bridge for the people making sacrifices, which is the ultimate real Self itself, and which guarantees the safe conduct for those who want to cross the worldly river".

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि, मनः प्रग्रहमेव च ।।३।।

पदार्थ—"तुम (**आत्मानम्**) अपने आत्मा को (**रथिनम्**) सवार या रथारोही (**विद्धि**) जान लो। (**शरीरं तु**) शरीर को तो (**रथम् एव**) रथ के रूप में ही जानो। (**बुद्धिं तु**) बुद्धि को केवल (**सारथिम्**) सारथि के रूप में (**विद्धि**) जानो। (**मनः च**) और मन को (**प्रग्रह एव**) लगाम के रूप में जानो।"

"Know your own Self as charioteer, your own body as chariot, your own wisdom as driver, and your own mind as the controlling reigns."

इन्द्रियाणि हयानाहुः विषयाँस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।।४।।

पदार्थ—"(**मनीषिणः**) मनीषी या विज्ञ जन (**इन्द्रियाणि**) इन्द्रियों को (**हयान्**) रथ खींचने वाले घोड़ों के रूप में (**आहुः**) कहते हैं। (**तेषु**) उन इन्द्रिय रूपी घोड़ों के (**विषयान्**) शब्द-स्पर्श-रूप-रसादि विषयों को (**गोचरान्**) पशुओं के लिए चरने के मैदानों के रूप में कहते हैं। ऐसे लोग (**इति**) यह बात भी (**आहुः**) कहते हैं कि (**इन्द्रियमनोयुक्तम्**) इन्द्रिय और मन से युक्त (**आत्मा**) आत्मा ही (**भोक्ता**) इस जीवन में भोग करने वाला है।"

"The intellectuals call the Senses as the horses of that chariot, while they call the sensory objects as the grazing fields for those horses. They also tell us that our soul or individual Self becomes the real enjoyer in association with the senses and the mind."

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ।।५।।

पदार्थ—"(**यः तु**) जो व्यक्ति (**सदा अयुक्तेन मनसा**) सदा अनियन्त्रत या ठीक से न सधे हुए मन से युक्त होकर (**अविज्ञानवान् भवति**) सत्यज्ञान को पाए बिना अज्ञानी बना रहता है, (**तस्य इन्द्रियाणि**) उसकी इन्द्रियाँ (**अवश्यानि**) उसी प्रकार वश में नहीं रहती, (**इव**)

जिस प्रकार (सारथेः) सारथि के (दुष्टाश्वाः) दुष्ट या अनियन्त्रित घोड़े बस में नहीं रहते।"

"His senses become uncontrolled like the bad horses of a chariot-driver, who remains always satisfied without knowing the truth, with his undedicated and uncontrolled mind."

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥६॥

पदार्थ—"किन्तु दूसरी ओर, (यः) जो व्यक्ति (विज्ञानवान् भवति) सत्य ज्ञान को पा चुका होता है, तथा (सदा) सर्वदा (युक्तेन मनसा) नियन्त्रित और सधे हुए मन से युक्त होता है, (तस्य) उसकी (इन्द्रियाणि) ज्ञान और कर्म की इन्द्रियां (वश्यानि) उसी प्रकार नियन्त्रण और वश में रहती हैं, (इव) जिस प्रकार (सारथेः) सारथि के वश में (सदश्वाः) अच्छे घोड़े रहते हैं।"

"On the other hand, his senses remain under control like the good horses of a chariot-driver, who comes to know the reality and truth through his dedicated and controlled mind."

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥७॥

पदार्थः—"(यः) जो व्यक्ति (सदा) सर्वदा ही (अविज्ञानवान्) सत्य ज्ञान से हीन, (अमनस्कः) अस्थिर या अशान्त मन वाला, एवं

(अशुचिः) पवित्रता से रहित होता है, (सः) वह (तत् पदम्) उस परम पद या परब्रह्म के योग की स्थिति को (न आप्नोति) नहीं पा सकता। (संसारं च) और इसलिए वह फिर से इस संसार को ही (अधिगच्छति) प्राप्त होता है। अर्थात्, वह मुक्ति न पाकर फिर से इसी मनुष्य जन्म को पाता है।"

"He can never get to that ultimate stage of Supreme Reality, who does not possess the true knowledge and has always an unsteady mind and is also full of impurities. Instead, he has to return to this mortal world again, through his rebirths."

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥८॥

पदार्थः—"(यः तु) किन्तु जो (विज्ञानवान्) परम सत्य को जानने वाला, (समनस्कः) एकाग्र मन वाला एवं (सदा शुचिः) सदा पवित्रता से युक्त (भवति) होता है, (सः) वह (तत् पदम्) परब्रह्म से एकता के रूप में उस परम पद को (आप्नोति) पा लेता है, (यस्मात्) जिससे पृथक् होकर वह (भूयः) फिर से (न जायते) जन्म नहीं लेता।"

"But he, who knows the ultimate reality, has a steady mind and always retains purity, gets to that ultimate stage of unity with that Ultimate Reality, from which he does not return to this world again by way of new births."

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान् नरः।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥९॥

पदार्थः—"(यः) जो (नरः) मनुष्य (विज्ञानसारथिः) विज्ञान अथवा सत्य ज्ञान को अपना सारथि बना कर चलता है, तथा (मनः-प्रग्रहवान्) अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रण की लगाम में बाँधकर रखता है, (सः) वह व्यक्ति ही (अध्वनः) अपने मनुष्य-जीवन-रूपी मार्ग के (पारम्) पार (गच्छति) जा पाता है। मानव जीवन के पथ का (तत्) वह पार या लक्ष्य ही (विष्णोः) विष्णु या परम व्यापक ब्रह्म का (परमं पदम्) सर्वोच्च पद या स्थान है।"

Only that man attains the aim of his path of life, who employs the true knowledge as his chariot-driver and uses his mind as a powerful whip. That aim of the path of his life is to attain the Ultimate and Supreme abode of Vihsnu, i.e. the omnipresent God."

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिः बुद्धेरात्मा महान् परः ॥१०॥

पदार्थ—"(इन्द्रियेभ्यः) ज्ञान और कर्म की इन्द्रियों से (अर्थाः) उनके रसरूपादि विषय (पराः) अधिक उत्कृष्ट या सूक्ष्म हैं। (अर्थेभ्यः च) और उन इन्द्रियों के विषयों से भी (परम्) उत्कृष्ट या सूक्ष्म है (मनः) मन। (मनसः तु) उस मन से भी (परम्) सूक्ष्म या उत्कृष्ट है (बुद्धिः) बुद्धि। और, (बुद्धेः) उस बुद्धि की अपेक्षा भी (महान् आत्मा) महत्-तत्त्व से युक्त आतमा (परः) उत्कृष्टतर और सूक्ष्मतर है।"

"Sensory objects are finer than the senses themselves. The human mind is still finer than those sensory objects. Intellect and wisdom are far supperior than even this mind. But that Atman or Self is far greater and sup-

erior than even this intellect, and is conscious of its own greatness."

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किंचित्, सा काष्ठा सा परा गतिः ।।११।।

पदार्थ—"(**महतः**) उस महत् तत्त्व या महान् आत्म तत्त्व से भी (**परम्**) श्रेष्ठ या सूक्ष्म है (**अव्यक्तम्**) अव्यक्त या न दिखाई देने वाला प्रकृति का सूक्ष्म रूप । और (**अव्यक्तात्**) उस अदृश्य और अव्यक्त रूप से भी (**परः**) श्रेष्ठ और सूक्ष्म है (**पुरुष**) पुरुष या सर्वव्यापी ब्रह्म । (**पुरुषात्**) उस पुरुष या सर्वव्यापी ब्रह्म से (**परम्**) श्रेष्ठ या सूक्ष्म (**न किंचित्**) कोई भी अन्य चीज़ नहीं है । (**सा काष्ठा**) वह पुरुष ही उपलब्धि या प्राप्ति की सीमा है और (**सा परा गतिः**) वह ही हमारी गति या पहुंच की भी अन्तिम सीमा है ।"

"Avyakta or the unmainfest is finer and better than this Self, which is conscious of its own greatness. But better and finer than this unmainfest or Avyakta is God or omnipresent Purusha. None or nothing else is better and finer than this Purusha. He is tbe ultimate limit and supreme goal for all and forever."

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते अग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ।।१२।।

पदार्थ—"(**एषः**)यह (**आत्मा**) आत्मा (**सर्वेषु भूतेषु**) सब प्राणियों में (**गूढः**) छिपा हुआ है । इसीलिए (**प्रकाशते न**) व्यक्त रूप से दिखाई नहीं देता । (**सूक्ष्मया अग्रया तु बुद्ध्या**) लेकिन सूक्ष्म और पैनी बुद्धि के

द्वारा (**सूक्ष्मदर्शिभिः**) सूक्ष्मदर्शी साधकों के द्वारा (**दृश्यते**) वह देख लिया जाता है।"

"This Atman or Self does not manifest itself externally and remains hidden within in all the beings. It can be seen, however, only by those, who can see even the finest and minutest truth with the help of their finer and prone intellect".

यच्छेद् वाङ् मनसि प्राज्ञः, तद् यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्, तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ।।

पदार्थ—"(**प्राज्ञः**) बुद्धिमान् मनुष्य (**वाक्**) वाणी को (**मनसि**) मन की अधीनता में (**यच्छेत्**) अर्पित कर दे। तब (**तत्**) उस मन को (**आत्मनि ज्ञाने**) अपने ज्ञानमय आत्मा या आत्मज्ञान के अधीन (**यच्छेत्**) दे दे या कर दे। तब (**ज्ञानम्**) उस ज्ञान या आत्मज्ञान को (**महति-आत्मनि**) महत् तत्त्व या बुद्धितत्त्व से युक्त आत्मा के अधीन (**यच्छेत्**) कर दे। इस प्रकार बुद्धितत्त्व में सब भावनाओं को लीन करने के बाद वह इससे भी ऊपर उठने का प्रयत्न करे, और (**तत्**) उस बुद्धितत्त्व में स्थिर आत्मा को (**शान्ते आत्मनि**) सत्त्वादि तीनों गुणों की क्रिया से रहित शान्त परम आत्मा या ब्रह्म में (**यच्छेत्**) लीन कर दे।"

व्याख्या—यहां भौतिक या अन्नमय स्तर से क्रमशः **मनोमय**, **ज्ञानमय**, **बुद्धिमय** या **प्रकाशमय**, एवं **शान्त** या **आनन्दमय कोशों** में उठकर पहुँचते जाने की बात समझाई गई है।

"The wise man must subordinate successively his speach unto his Mind, his Mind unto his knowledge,

his knowledge unto his intellect, and his inttellect unto the Supreme Self, which is calm in all respects."

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया,
दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति ॥१४॥

पदार्थ—"हे नचिकेता, (**उत्तिष्ठत**) उठो और (**जाग्रत**) अज्ञान से जागो। (**वरान्**) वरणीय कामनाओं और विद्वानों को (**प्राप्य**) प्राप्त करके उनसे (**निबोधत**) वास्तविक ज्ञान को प्राप्त करो। (**कवयः**) ज्ञानी लोग (**ततः पथः**) इस प्रकार के ज्ञान या प्रबोधन के मार्ग को उसी प्रकार (**दुर्गम्**) दुर्लंघ्य वा कठिनता से पार करने योग्य (**वदन्ति**) बताते हैं, जिस प्रकार (**निशिता**) तेज की हुई (**क्षुरस्य धारा**) छुरे की धारा (**दुरत्यया**) दुर्लंघ्य या लाँघने में कठिन होती है। अर्थात्, जिस प्रकार छुरे की तीक्ष्ण धारा पर पाँव रखकर लाँघना कठिन है, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्त करके अपनी आन्तरिक इच्छाओं को पा लेना भी दुष्कर ही है। अतः इस पथ पर चलने के लिए बहुत यत्न और सावधानी की आवश्यकता पड़ती है।"

"Get up and rise. After reaching to the adorable ones, try to get the true and real knowledge from them. The seers and scholars tell us that the way towards that knowledge is difficult and non-negotiable one. It is like the sharpened edge of a sword, which is difficult to tread upon."

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं
तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।

अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं,
निचाय्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते ।।१५।।

पदार्थ—"(यत्) जो तत्त्व (अशब्दम् अस्पर्शम्, अरसम्, अगन्धवत् च) शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध से अछूता एवं रहित है, (अव्ययं नित्यं च) शरीर और उसके विकारों से हीन एवं सदा एक ही स्थिति में रहने वाला है, (तथा) साथ ही जो तत्त्व (अनादि अनन्तम्) जन्म और मरण के बन्धन से हीन है; (महतः परम्) महत् या बुद्धि तत्त्व से भी परे हैं, अथवा बुद्धि भी जिस तक नहीं पहुंच सकती है, एवं (ध्रुवम्) सदा-सर्वदा बना रहने वाला है, (तत्) उस तत्त्व या पर-ब्रह्म को (निचाय्य) पहचान और जान कर मनुष्य भी (मृत्युमुखात्) मृत्यु के मुख से अथवा जन्म-मरण के चक्कर से (प्रमुच्यते) पूरी तरह मुक्त हो जाता है ।"

"One can attain the eternal deliverance from the clutches of the death, if only he knows and recognises that Supreme Self, which remains beyond the reach of sensory objects, i.e. of speech, touch, etc., and which is unperishable, eternal, having no birth or death, remaining beyond the reach of even intellect, and is always unmoving and steady in one and the same form."

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तं सनातनम् ।
उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते ।।१६।।

पदार्थ—(मृत्युप्रोक्तम्) मृत्यु या यमाचार्य द्वारा कहे हुए (सनातनम्) कभी पुराना न पड़ने वाले इस (नाचिकेतम् उपाख्यानम्) नचिकेता-सम्बन्धी सांकेतिक कथा को (उक्त्वा श्रुत्वा च) कहकर और

सुनकर (**मेधावी**) मेधा सम्पन्न या तीव्र बुद्धि वाला व्यक्ति (**ब्रह्मलोके**) ब्रह्म के दर्शन द्वारा प्राप्य स्थिति में या परम ज्ञान की स्थिति में (**महीयते**) सुख और महिमा को प्राप्त करता है।

That wise intellectual attains and enjoys the union with Brahman, in latter's abode, who narrates and listens to this eternal epilogue of Nachiketa, as told by the death or Yama as a teacher.

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि ।
प्रयतः श्राद्धकाले तदानन्त्याय कल्पते ।।
तदानन्त्याय कल्पते ।।१७।।

पदार्थ—(**यः**) जो (**प्रयतः**) संयमी साधक (**इमम्**) इस (**परमम्**) सर्वाधिक (**गृह्यम्**) गूढ ज्ञान को (**ब्रह्मसंसदि**) ज्ञान और ब्रह्म के उपासकों की सभा में (**श्रावयेत्**) सुनाता है, (**वा**) अथवा (**श्राद्धकाले**) पूज्यों के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिए एकत्र लोगों की सभा के मध्य सुनाता है। (**तत्**) उसका वह सुनाना (**आनन्त्याय**) उसकी अमरता की प्राप्ति के लिए (**कल्पते**) समर्थ होता है। अर्थात्, इस कथा के रहस्य को सुन-सुन कर वह स्वयं भी मृत्यु को अन्तकारी नहीं मानता तथा उसके श्रोता भी उस अनन्तता की स्थिति को स्वयं अनुभव करने लगते हैं।

When a man, who has controlled his sensuous behaviour, relates this supreme and most secret knowledge or dialogue to the assembly of seekers of that Brahman, or explains it at the time of paying tributes to the ancestors and forefathers, in reality he then enables himself as well as the listeners in attaining the eternal immortality, because then they all know that there is no virtual end for the Self.

कठोपनिषद्

द्वितीय अध्याय : प्रथम वल्ली

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूः,
तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन् ।
कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षद्
आवृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥१॥

पदार्थ—नचिकेता को समझाते हुए यम फिर से कहता है, "(**स्वयम्भूः**) किसी अन्य से जन्म न लेने वाले तथा स्वयं ही अपने कारणभूत (**ब्रह्म**) या परमात्मा ने (**खानि**) कर्ण आदि इन्द्रियों को (**पराञ्चि**) बाहर की ओर गतिवाली या बहिर्मुख (**व्यतृणत्**) घड़ा या निर्माण किया है । इसलिए सामान्य सांसारिक पुरुष (**पराङ् पश्यति**) सदा बहिर्मुख होकर बाहर की ओर ही देखता है; (**न अन्तः आत्मन्**) आत्मा के अन्दर नहीं झाँकता । परन्तु (**कश्चित्**) कोई एकाध ही (**धीरः**) बुद्धिमान् या कर्मशील मनुष्य (**अमृतत्वम् इच्छन्**) अमरता को चाहता हुआ (**आवृत्तचक्षुः**) आँख आदि इन्द्रियों को बाहर की ओर से मोड़कर और उन्हें अन्तर्मुख करके (**आत्मानम्**) आत्मा को (**प्रत्यक्**) प्रत्यक्ष रूप में (**ऐक्षत्**) देख पाता है ।"

व्याख्या—इन्द्रियाँ हमें स्वभावानुसार बाहर की ओर ले जाती हैं। जब उन्हें हम अन्तर्मुख करके आत्मा का ज्ञान पाना चाहते हैं, तभी हम उस आत्मा को प्रत्यक्ष करने में समर्थ हो पाते हैं। इन्द्रियों को संयम और अभ्यास के द्वारा ही अन्तर्मुख किया जा सकता है।

"As Self-created God has carved out our sensory organs outwardly, so we look outwards only and not within our own Self. Rarely a wise or dutiful man realises and sees face to face that Atman or Self, after turning his eyes, etc., inwards, while seeking for immortality".

पराचः कामाननुयान्ति बाला-
स्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा
ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रथन्ते ॥२॥

पदार्थ—"जो (**बालाः**) मूर्ख लोग अपनी (**पराचः**) बहिर्मुख या बाहरी (**कामान्**) मन चाही इच्चाओं को पूरा करने के लिए (**अनुयान्ति**) उनके पीछे पड़ जाते हैं या उन्हें पूरा करने में जुटे रहते हैं, (**ते**) वे (**विततस्य**) चारों ओर फैले हुए (**मृत्योः**) मृत्यु के (**पाशम्**) जाल की ओर (**यन्ति**) चलते जाते हैं। (**अथ**) किन्तु **धीराः** बुद्धिमान् और कर्मशील लोग (**ध्रुवम् अमृतत्वं विदित्वा**) निश्चित और सदा स्थायी अमरता को पहचानकर (**इह**) इस संसार में (**अध्रुवेषु**) यहां की अनिश्चित या अस्थायी बातों के विषय में (**न प्रार्थयन्ते**) याचना नहीं करते।"

"The fools, who follow their outwardly desires, fall only into the spreadout trap of death. But the wise

and dutiful ones do not pray for unstable or non-stationary things of the world, after knowing the only stationary thing, i.e. immortality".

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान् ।
एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते । एतद्वै तत् ॥

पदार्थ—"(येन) जिस (एतेन एव) इसआत्मा के द्वारा ही (रूपं, रसं, गन्धं, शब्दान्, स्पर्शान्, मैथुनान् च विजानाति) रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श और कामनाओं की वास्तविकता को जानता और भोगता है, उस आत्मा के अतिरिक्त (अत्र) इस भौतिक संसार में (किम्) जानने योग्य और क्या वस्तु (परिशिष्यते) बच जाती है। (एतत् वै तत्) इन शब्दस्पर्शादि से परे जो ज्ञातव्य वस्तु बच जाती है, वही यह आत्मा है। अर्थात्, जिस आत्मा से सब विषय जाने जाते हैं, उसे जानना ही अभीष्ट है।"

"Through which Self one knows and enjoys all the sensuous objects, like beauty, smell, speech, touch and sexual enjoyment, etc., what else remains there for a man to know other than that Self? It is that Self alone which should be known as the ultimate Reality".

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥४॥

पदार्थ—"(येन) जिसके द्वारा (स्वप्नान्तम्) स्वप्न में व्याप्त होने वाली एवं (जागरितान्तम्) जागृति की दशा में प्राप्त होने वाली (उभौ) दोनों ही बातों को मनुष्य (अनुपश्यति) पूरी तरह देख और समझ पाता है।

अर्थात्, जिस आत्मा के माध्यम से वह स्वप्न और जागृति में व्याप्त सत्यों या रहस्यों को जानने में समर्थ होता है। उस (**महान्तम्**) महान् और (**विभुम्**) सर्वत्र व्यापक (**आत्मानम्**) आत्मा को (**मत्वा**) जान और समझ कर (**धीरः**) कर्म और बुद्धि का उपासक व्यक्ति (**न शोचति**) किसी प्रकार के शोक को प्राप्त नहीं होता।"

व्याख्या—स्वप्नावस्था या जागरण में जो भी ज्ञातव्य बातें हैं, वे सब आत्मा के द्वारा ही जानी जा सकती हैं। स्वतः उस आत्मा को समझना ही बुद्धिमान् मनुष्यों का कर्तव्य हो जाता है। उसे जान और समझ कर ही मनुष्य मृत्यु या विनाश की चिन्ता से रहित होकर अमरता का अनुभव करने लगता है। वह आत्मा ही महान् एवं सर्वव्यापक है।

"The wise and the dutiful persons are never left with any feeling of sorrow after knowing that greatest and omnipresent Self, through which alone one sees or realises all the acts or things occurring during the sleep or awakening".

य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात्।
ईशानं भूतभव्यस्य, ततो न विजुगुप्सते ॥५॥

पदार्थ—"(**यः**) जो (**इमम्**) इस (**मध्वदम्**) मधुरता को चखने वाले (**आत्मानम्**) आत्मा को (**जीवम्**) जीव के रूप में (**अन्तिकात्**) बहुत समीप से (**वेद**) जान लेता है, कि यह ही (**भूतभव्यस्य**) अतीत और भावी में होने वाले सभी तथ्यों का (**ईशानम्**) स्वामी या अधिष्ठाता है, वह (**ततः**) आत्मा को इस रूप में जान कर (**न विजुगुप्सते**) किसी भी बात से घृणा नहीं करता।"

व्याख्या—जिसने भी यह तथ्य जान लिया कि साँसारिक सुखों का भोक्ता जीव ही वास्तविक (आत्मा) है तथा वही अतीत और भविष्य का विधायक है, उसे किसी भी प्रकार के शोक करने का अवकाश नहीं रहता है

"Whosoever knows this honey-eater Soul of his own-self very intimately, as also the fact that this very Soul is the lord of the past and the feature, he is left with no cause for repentence after gaining such knowledge".

यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत ।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत । एतद्वै तत् ॥

पदार्थ—"(**यः**) जो (**तपसः पूर्वम्**) सृष्टिरचना के समय हिरण्यगर्भ में हुए तप से भी पूर्व (**जातम्**) विद्यमान था, जो (**अद्भ्यः पूर्वम्**) पंचमहाभूतादि की निर्माणावस्था में जलों की उत्पत्ति से भी पूर्व (**अजायत**) उत्पन्न हुआ था, तथा (**यः**) जो (**गुहां प्रविश्य**) इस समस्त सृष्टि रूपी गुफा या हृदय-गुहा के भीतर घुसकर (**तिष्ठन्तम्**) छिपे हुए उस परम रहस्य रूप ब्रह्म को (**भूतेभिः**) उत्पन्न प्राणियों के माध्यम से (**व्यपश्यत**) देखता है, (**तत् वै एतत्**) वही यह आत्मा है।"

व्याख्या—'ब्रह्म' सृष्टि-रचना के पूर्व भी विद्यमान था और वही इस सृष्टि में भी व्याप्त है। प्राणियों में स्थित होकर उसे खोज निकालने वाला तत्त्व यह आत्मा ही है।

"Who knows that element, which was present even before the starting of energy generated during the process of creation, or even before the appearance of waters during the creation of the elementary world, and who has seen

that Supreme Element, as pervading throughout the whole cavity of the universe or as hidden in the cavity of heart, through the eyes of all the creatures, he is nothing but this Self; Supreme Element itself being the Brahman."

या प्राणेन सम्भवत्यदितिर्देवतामयी ।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभिर्व्यजायत । एतद्वैतत् ॥

पदार्थ—' (या) जो (देवतामयी) दिव्यशक्तियों से सम्पन्न (अदितिः) अखण्डनीया परम सत्ता (प्राणेन संभवति) प्राणों के साथ रहकर अपने अस्तित्व को प्रगट करती है, तथा (या) जो (गुहां प्रविश्य) हृदय की गुफा या सृष्टि के भीतर छिपकर या व्याप्त होकर (तिष्ठन्ती) स्थित होने पर भी (भूतेभिः) पञ्चभूतात्मक सृष्टि या जगत् के प्राणियों के माध्यम से (वि अजायत) विविध रूप में प्रगट होती है, (तत् वै) वह सत्ता ही (एतत्) यह आत्मा है । अर्थात्, प्राणों के संयोग एवं शरीर के आकार को धारण करके यह आत्मा ही अदृश्य होकर भी दृश्य हो जाता है ।"

"That indestructible supra-divine power, which manifests itself with the help of the Pranas or life and, though remaining hidden in the cavity of heart or of universe and which exhibits itself in many forms through the elementary creation, is nothing but this very Self. It is this Soul or Self which manifests and exhibits itself with the help of the things created by itself".

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः ।
दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ।
एतद्वै तत् ॥८॥

पदार्थ—"**(अरण्योः)** यज्ञाग्नि प्रज्वलित करने वाली अरणि की दोनों समिधाओं के भीतर **(निहितः)** स्थित **(जातवेदाः)** प्रत्येक उत्पन्न वस्तु में विद्यमान या पाया जाने वाला अग्नि **(गर्भिणीभिः सुभृतः)** गर्भवती स्त्रियों द्वारा भली प्रकार धारण किए हुए **(गर्भः इव)** गर्भ के समान छिपा रहता है। **(अग्निः)** वही अग्नि **(जागृवद्भिः)** जागते हुए **(हविष्मद्भिः)** यज्ञ के लिए हविः को अर्पित करने वाले **(मनुष्येभिः)** मनुष्यों के द्वारा **(दिवे दिवे)** प्रतिदिन **(ईड्यः)** पूजा और स्तुति किया जाता है। **(तत्)** वह अग्नि भी **(वै एतत्)** इस परम सत्ता याआत्मा का ही प्रगट रूप है।"

व्याख्या—उस अग्नि की भाँति ही वह परम तत्त्व भी इस सृष्टि के भीतर छिपा पड़ा है। वही उपासनीय है। जगत् की विविध वस्तुओं के माध्यम से वही परम तत्त्व प्रगट होता है।

"The fire reamins hidden within the fire-wood, as reamins the womb well-protected within the pregnant ladies. It is this hidden fire, which becomes adorable daily for the awakened and the offering people, in the form of sacrificial divine power. The same is true about that Supreme element also, who, though present in whole of the universe, becomes manifest only through the born things. Only He is adorable for all the beings."

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति।
तं देवाः सर्वे अर्पितास्तदु नात्येति कश्चन। एतद्वै तत् ॥

पदार्थ—"**(यतः)** दिव्यता के भण्डार जिस तत्त्व में से **(सूर्यः)** सूर्य अपना प्रकाश लेकर **(उदेति च)** प्रगट या उदय होता है और **(यत्र)**

जिसमें वह (**अस्तं च गच्छति**) अस्त भी होता है, (**तम्**) उस परम दिव्य तत्त्व के ही (**सर्वे देवाः अर्पिताः**) अधीन सभी देवता या दिव्य-शक्तियां रहती हैं। (**तत्**) उस तत्त्व या दिव्य सत्ता से (**कश्चन**) कोई भी अन्य सत्ता या शक्ति (**न अत्येति**) बढ़कर स्थित नहीं है। (**एतत् वै तत्**) वह दिव्यशक्ति ही यह परम ब्रह्म है।

"The sun rises from and sets in within the same Divine? Supreme. All other divine powers are subservient to that element alone. None else surpasses its powers. That element itself is the Supreme Self or Brahman".

यदेवेह तदमुत्र, यदमुत्र तदन्विह।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥१०॥

पदार्थ—"(**यत्**) जो तत्त्व (**इह**) इस व्यक्त संसार में या इन मूर्तिमान् द्रव्यों में स्थित है, (**तत् एव**) वह ही (**अमुत्र**) अव्यक्त अथवा अदृश्य सत्ता के रूप में भी स्थित है। और (**यत्**) जो तत्त्व (**अमुत्र**) अव्यक्त या अदृश्य रूप में स्थित है, (**तत् एव**) वह ही (**इह अनु**) इस व्यक्त संसार में भी व्याप्त है। जो व्यक्ति एकता के इस सत्य को न जानकर (**नाना इव**) उस सत्ता को अनेक द्रव्य-रूपों या सत्ता-रूपों में बँटा हुआ (**पश्यति**) देखता या समझता है, (**सः**) वह अज्ञानी मनुष्य (**मृत्योः मृत्युम् अप्नोति**) बार-बार जन्म लेकर एक मृत्यु से दूसरी मृत्यु को पाता रहता है। अर्थात्, ऐसा अज्ञानी जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा ही रहता है"।

"The same element, which is manifest here, is present even in the unreachable or unknown quarters and is also present in this manifest world. The one, who sees this

Element as divided in many forms, goes on taking birth again and again and proceeds from one death to the other".

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानाऽस्ति किंचन ।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥११॥

पदार्थ—"(**इदम्**) इस तथ्य को (**मनसा एव**) मन के द्वारा ही (**आप्तव्यम्**) जान या पा लेना चाहिए कि (**इह**) इस व्यक्ताव्यक्त संसार में (**किंचन**) कुछ भी (**नाना न अस्ति**) अनेकतत्त्वमय नहीं है। (**यः**) जो व्यक्ति इस पर भी (**इह**) इस संसार में (**नाना इव**) एक तत्त्व को अनेक तत्त्वों में बँटे हुए रूप में पश्यति देखता है, (**सः**) वह (**मृत्योः**) एक मृत्यु से (**मृत्युम्**) दूसरी मृत्यु को (**गच्छति**) प्राप्त होता है। अर्थात्, वह जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है"।

"It must be borne well in mind that there are no multiple realities in this world. The one, who sees such multiplicity, takes birth again and again and proceeds from one death to the other".

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ॥ एतद्वै तत् ॥

पदार्थ—"(**आत्मनि मध्ये**) आत्मा के इस विस्तृत फैलाव के मध्य में (**पुरुषः**) वह परमसत्तामय पुरुष या पर ब्रह्म (**अंगुष्ठमात्रः**) इतने सूक्ष्म रूप में स्थित है, जैसे सम्पूर्ण शरीर में अंगूठा। वह परब्रह्म ही (**भूतभव्यस्य**) अतीत और भविष्य का (**ईशानः**) स्वामी और अधीक्षक है। (**ततः**) उस ईश्वर को जान लेने के बाद ही मनुष्य (**न विजुगुप्सते**) विच-

लित या शोकान्वित नहीं होता। (एतत् वै तत्) यही वह परमब्रह्म है"।

"The Supreme Self or Purusha lives in a minute form, like a thumb, within the vastness of the great Self. He is the lord of all the past and the future creation. After knowing this fact, there remains nothing for a man to repent or to feel sorry. This Purusha itself is the Brahman".

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः ।। एतद्वै तत् ।।

पदार्थ—"वह (अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषः) अंगूठे जितना छोटा दीखने वाला पुरुष या परमात्मा (अधूमकः) धुएँ से रहित (ज्योतिः इव) दीपक के प्रकाश की भाँति हमारे भीतर स्थित रहता है। वह (भूत-भव्यस्य) अतीत और भविष्य का (ईशानः) स्वामी है। (स एव) वह ही (अद्य) इस समय भी विद्यमान है और (स उ) वह ही (श्वः) भविष्य में भी विद्यमान रहेगा। (एतत् वै तत्) यही 'पुरुष' वह 'परम तत्त्व' या परब्रह्म है"।

"That thumb-like minute Purusha remains within ourselves, like a smokeless glow of a lamp. He lords over all the past and the present creations. He is present at this moment and will remain present even in the future. It is this very element, which is known as the Supreme Self".

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति ।
एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुधावति ।।१४।।

पदार्थ—"(**यथा**) जिस प्रकार (**दुर्गे**) दुर्गम (**पर्वतेषु**) पर्वत शिखरों पर (**वृष्टम्**) बरसा हुआ (**उदकम्**) जल (**विधावति**) नाना प्रवाहों के रूप में इधर-उधर बहता है, (**एवम्**) इसी प्रकार (**धर्मान्**) जीवन और संसार के धारक तत्त्वों को (**पृथक्**) अनेक रूप में और अलग-अलग बँटा हुआ (**पश्यन्**) देखने वाला व्यक्ति भी (**तान् एव अनु**) उन धर्मों या विषयों के ही पीछे-पीछे (**धावति**) दौड़ता रहता है।"

"As the same rainy water, falling on the inaccessible peaks of the montains, flows in many and different directions, in the same way one sees the same element being divided in many facets. He, who recognises the same reality in many divided forms, tries to run simulcnecusly after all of them and in all the directions".

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति ।
एवं मुनेः विजानत आत्मा भवति गौतम ॥१५॥

पदार्थ—(**यथा**) जिस प्रकार (**शुद्धे**) स्वच्छ और निर्मल पात्र में (**आसिक्तम्**) डाला या रखा हुआ (**उदकम्**) जल (**तादग् एव**) पात्र के अनुकूल **वर्ण** या रंग और **आकार** वाला (**भवति**) हो जाता है, (**एवम्**) इसी प्रकार, (**गौतम**) हे गौतम पुत्र, (**विजानतः**) सत्य को जान लेने वाले (**मुनेः**) मुनि या मनीषी का (**आत्मा**) आत्मा भी (**भवति**) हो जाता है। अर्थात्, उसे भी देश-काल-आदि के अनुसार विविध रूप में देखा जा सकता है। इस पर भी तत्त्व की दृष्टि से वह आत्मा एक ही रहता है"।

"As the pure water takes on the colour and shape of its pure cantainer, in the same way the Self of a truthknowing Muni appears to be taking different forms, O Son of Gotama".

द्वितीय अध्याय : द्वितीय वल्ली

पुरमेकादशद्वारम् अजस्यावक्रचेतसः ।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते ॥१॥

पदार्थ—आचार्य समझाते हुए कहता है, "(**एकादशद्वारम्**) इन्द्रियों के ग्यारह द्वारों से युक्त शरीर को (**अवक्रचेतसः**) किसी भी प्रकार के विकार से हीन चेतना वाले (**अजस्य**) अजन्मा आतमा के ही (**पुरम्**) अधिष्ठान या आवास स्थल के रूप में (**अनुष्ठाय**) मान और जानकर कोई भी साधक (**न शोचति**) शोक को प्राप्त नहीं होता। अर्थात्, तब वह जान जाता है कि यह नश्वर देह तो अजन्मा और अमर आत्मा का निवास-स्थलमात्र ही होता है। (**च**) और इस प्रकार(**विमुक्तः**)इस शरीर के विनाश की चिन्ता से छूटा हुआ वह आत्मा (**विमुच्यते**) जन्म-मरण के चक्र से भी छूट जाता है। तब वह सच्चे अर्थों में कर्मों से मुक्त हो जाता है"।

टिप्पणी—आँख, कान, नाक के दो-दो छिद्र तथामुख, मूत्रेन्द्रिय, गुदा, नाभि और ब्रह्मरन्ध्र के एक-एक द्वार को मिलाकर कुल **ग्यारह द्वार** या छिद्र होते हैं।

Acharya says, "After knowing and ascertaining the fact that this body, equipped with eleven edifices or sensuous organs, is nothing but a dwelling place for the immortal and non-manifesting Soul or Self, there re-

mains nothing to grieve over. Thus, relieved from the worries and fears about the impending death, one can attain the eternal salvatian for his soul, so that it is saved from taking birth again and again".

हंसः शुचिषद् वसुः अन्तरिक्षसद्
होता वेदषिद् अतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद् वरसद् व्योमसद् अब्जा
गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥२॥

पदार्थ—"(**बृहत् ऋतम्**) वह एक ही नित्य वर्धमान एवं नित्य नवीन सत्य, अर्थात् वह परम आत्मा, ही सर्वत्र एवं सभी रूपों में व्याप्त है। वह (**हंसः**) हंस या आत्मा के रूप में (**शुचिसद्**) पवित्र हृदय या सूर्य बनकर द्युतिमय लोक में स्थित रहता है। (**वसुः**) विभिन्न वस्तुओं या वासक तत्त्वों के रूप में वह (**अन्तरिक्षसद्**) अन्तरिक्ष में स्थित रहता है। (**होता**) होता बनकर या उस रूप में वह (**वेदिषत्**) यज्ञवेदी पर बैठता है। अर्थात्, इस जीवन यज्ञ को चलाता है। (**अतिथिः**) अतिथि के समान (**दुरोणसत्**) गृह के विवर में या गृह की शरण में रहने वाला वही है। वह (**नृषत्**) मनुष्यों में रहता है, (**वरसत्**) सभी वरणीय वस्तुओं में रहता है, तथा (**व्योमसद्**) विस्तृत आकाश या हृदयाकाश में रहता है। वह आत्मा (**अब्जाः**) मानव के विविध कर्मों के रूप में व्यक्त होता है, (**गोजाः**) उसकी वाणी और इन्द्रियों के माध्यम से भी व्यक्त होता है, (**ऋतजाः**) प्रकृति के अपरिवर्त्तनीय त्रिकाल-सत्य नियमों के माध्यम से भी व्यक्त होता है, तथा वही (**अद्रिजाः**) पर्वत एवं उनसे निकलने वाली नदी आदि के माध्यम से, अथवा सभी वनस्पति आदि के माध्यम से, भी व्यक्त होता है।"

"That Supreme Self is ever-expanding and remains in the form of eternal truth. It is this Self, which remains in heavens like the Sun, in space in the form of different elements essential for life, in life like a priest on the sacrificial after, and in living bodies like a guest in a home. It is present in every human being, in every adorable thing, as well as in the illuminated out-lying space. He manifests himself through the human deeds, speech or senses, and eternal laws or truth. He also mainfests himself through the different elements of this earth, e.g., mountains, rivers, vegetations, etc. He is present everywhere and in every form".

उध्र्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ॥३॥

पदार्थ—"(**विश्वे देवाः**) सभी दिव्य शक्तियां (**मध्ये आसीनम्**) इस ब्रह्माण्ड और शरीर के मध्य में स्थित (**वामनम्**) विशालतम होकर भी अंगुष्ठाकार रूप में बौना बनकर रहने वाले इस परम आत्मा की ही (**उपासते**) उपासना करते हैं । अर्थात्, इसे ही जानने का यत्न करते हैं और इससे ही अपने लिए दिव्य शक्तियों की याचना करते हैं । शरीर के मध्य में अंगुष्ठमात्र या वामन रूप में स्थित होकर भी यही आत्मा (**प्राणम्**) प्राण और जीवन शक्ति को (**ऊर्ध्वम्**) ऊपर की ओर (**उन्नयति**) उठाता या ले जाता है । अर्थात्, प्राणशक्ति को समृद्ध करता है । तथा यही (**अपानम्**) अपान शक्ति या ह्रास की स्थिति को (**प्रत्यग्**) प्रत्यक्ष रूप से (**अस्यति**) बाहर फेंक देता है । अर्थात्, जीवन का ह्रास करने वाली शक्तियों को यह आत्मा परास्त कर देता है । इस प्रकार लघु

और अदृश्य होकर भी यही आत्मा जीवन का सच्चा सूत्रधार है"।

"All the divine powers pray and beg for their own strength before this Supreme Self only, which is present within the bodies and in this universe, just like a Dwarf, i.e. in an invisible form. Though invisible and dwarf, it is this Supreme Element which brings up or promotes our breath and life, as well as takes out or defeats the excreta and fatigue".

अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः ।
देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते ॥४॥

पदार्थ—"(**शरीरस्थस्य**) शरीर में स्थित (**अस्य**) इस (**देहिनः**) शरीरधारी पुरुष या देह में रहने वाले आत्मा के (**विस्रंसमानस्य**) शरीर के विनाश के समय (**देहात् विमुच्यमानस्य**) शरीर से छूटकर पृथक् होते हुए (**अत्र**) इस शरीर अथवा संसार में (**किम्**) कौन सा तत्त्व (**परिशिष्यते**) बचा रहता है ?"

"When this mortal body becomes useless and it is discarded by the soul, what remains there in this body after the departure of that soul, which was till then dwelling within this body ?"

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन ।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥५॥

पदार्थ—"(**कश्चन**) कोई भी (**मर्त्यः**) मनुष्य (**न प्राणेन**) न तो ऊपर बताए **प्राण** या जीवनशक्ति से ही और (**न अपानेन**) न ही **अपान** या श्रम की शक्ति से ही (**जीवति**) जीवित रहता है। सब प्राणी (**इतरेण**) उस एक अन्य ही तत्त्व के बल पर (**जीवन्ति**) जीवित रहते हैं, (**यस्मिन्**) जिस पर (**एतौ**) ये दोनों प्राण और अपान (**उपाश्रितौ**) आश्रित होकर स्थित हैं। या, ये दोनों जिसके आधीन होकर अपना कार्य करते हैं।"

"No mortal men remains alive either due to Prana or vitality, or due to Apana or the spending activity alone. It is an other element, in the form of Self or Soul, which protects and promotes the life and to which both the aforesaid elements are subservient for their own sustenance".

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥६॥

पदार्थ—"(**हन्त**) हे प्रिय (**ते**) तुम्हारे लिए (**इदम्**) इस (**गुह्यम्**) गुहा में स्थित या न दिखाई देने वाले (**सनातनम्**) अनादि काल से एक ही रूप में चले आने वाले (**ब्रह्म**) नित्य बृंहणशील या व्यापक विस्तार वाले ब्रह्म के विषय में (**प्रवक्ष्यामि**) मैं प्रवचन करूंगा। अर्थात्, मैं तुम्हें इसका रहस्य समझाऊंगा। (**गौतम**) हे गोतमपुत्र ! (**च**) और मैं यह भी बताऊंगा कि (**आत्मा**) आतमा (**मरणं प्राप्य**) भौतिक देह के मृत्यु प्राप्त कर लेने के बाद (**यथा**) किस प्रकार की स्थिति में (**भवति**) रहता है। अर्थात्, यह भी बताऊंगा कि देह के विनष्ट हो जाने के बाद आत्मा की क्या स्थिति होती है ?"

"O Nechiketa, the Son of Gotama, I feel pleasure in

telling you about the mysterious, ever-expanding and enternal Brahman, as a!so about the from and condition of Atman or Soul after the death of its physical abode, i.e. this mortal body".

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ।।७।।

पदार्थ—"(**अन्ये देहिनः**) शरीर में निवास करने वाले कुछ जीवात्मा (**शरीरत्वाय**) पुनः शरीर ग्रहण करने के लिए (**योनिम्**) स्त्री के गर्भ में (**प्रपद्यन्ते**) पहुँचते हैं। जबकि (**अन्ये**) कुछ अन्य आत्मा (**यथाकर्म**) अपने-अपने कर्मों के अनुसार एवं (**यथाश्रुतम्**) अपने ज्ञान के अनुसार (**स्थाणुम् अनु**) सदा और सर्वत्र स्थित रहने वाले परब्रह्म की ओर (**संयन्ति**) जाते हैं। अर्थात्, कुछ आत्मा परम ब्रह्म को पा लेते हैं।"

टिप्पणी—यहां प्रायः 'स्थाणु' का अर्थ टीकाकारों ने 'जड़ योनि' किया है। वास्तव में यहां आत्मा की मरणोपरान्त गति को दो विरोधी रूपों में बताया जा रहा है। **प्रथम** के अनुसार वह फिर से जन्म-मरण के चक्र में पड़ने के लिए शरीर धारण करता है। इसके विपरीत, **द्वितीय** स्थिति में वह जन्म-मरण के चक्र से छूट कर सदा स्थिर रहने वाले परमात्मा या परब्रह्म से मिलकर एकाकार हो जाता है। 'स्थाणु' को 'शिव' के एक नाम के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। इसका अर्थ 'जड़' या 'स्थावर' करने से काव्यगत एवं दर्शन-गत चमत्कार नष्ट हो जाएगा।

"There are certain souls, which revert to the womb of a prospective mother, to take birth again by entering a new body. But, on the other hand, there are others

who go and unite with the Supreme Self or Brahman, due to their good deeds and good knowledge".

**य एषु सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ॥
तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ।
एतद्वै तत् ॥८॥**

पदार्थ—"(**एषु**) इन शरीरों के (**सुप्तेषु**) सोया होने पर भी (**यः पुरुषः**) इनके भीतर रहने वाला जो पुरुष या आत्मा (**जागर्ति**) जागता या प्रबुद्ध रहता है, तथा (**कामं कामम्**) अपनी इच्छानुसार (**निर्मिमाणः**) इस सृष्टि का निर्माण करता रहता है, (**तदेव**) वह पुरुष ही (**शुक्रम्**) पवित्रतम ज्योतिपुञ्ज है। (**तत्**) वह पुरुष ही (**ब्रह्म**) नित्य बृंहणशील परब्रह्म है, तथा (**तदेव**) उसे ही (**अमृतम् उच्यते**) कभी न मरने वाला 'अमृत' या अमरणधर्मा तत्त्व कहा जाता है। (**तस्मिन्**) उसके परम विस्तार में ही, अथवा उसके भीतर ही, (**सर्वे लोकाः श्रिताः**) सब लोकलोकान्तर स्थित रहते हैं। (**तद् उ**) उससे ही (**कश्चन**) कोई भी (**न अत्येति**) बढ़कर स्थित नहीं है। या, कोई उसकी शक्तियों का और उसके विस्तार का पार नहीं पा सकता। (**एतत् वै तत्**) यह 'आत्मा' ही वह ब्रह्म है।"

"The self or Purusha, lying within this body, is the one who remains awaken in all the sleeping bodies. Also, He goes on creating newer things according to his own wishes. That awakened self is the embodiment of light and purity. That itself is the Supreme Self and is known as 'Immortal' or 'Amrita' one. It is that Purusha

or Brahman in whose vast expanse lie all these visible creations or worlds. None can surparss Him in any way. Thus, the same Soul is the Brahman itself".

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥

पदार्थ—"(**यथा**) जिस प्रकार (**एकः अग्निः**) अकेला अग्नि (**भुवनं प्रविष्टः**) समस्त सृष्टि-रचना में रमा हुआ (**रूपं रूपम्**) प्रत्येक दृश्यमान द्रव्य के अन्दर स्थित होकर (**प्रतिरूपः**) उस-उस पदार्थ के रूप के अनुसार या उस जैसा ही (**बभूव**) हो जाता है, अथवा वैसा बना दिखाई देता है, (**तथा**) उसी प्रकार (**सर्वभूतान्तरात्मा**) सब प्राणियों के भीतर निवास करने वाला आत्मा भी (**एकः**) अकेला होकर भी (**रूपं रूपम्**) प्रत्येक रूपवान् पदार्थ के भीतर रहकर (**प्रतिरूपः**) उस-उस पदार्थ के रूप में ही, या उस जैसा ही, दिखाई देने लगता है। बल्कि वह तो (**बहिः च**) उन पदार्थों के अतिरिक्त बाहर के अनन्त आकाश तक में भी व्याप्त है। अर्थात्, वह इस रचित सृष्टि के भीतर और बाहर सर्वत्र व्याप्त है।"

"As Agni, though being alone, is filling this whole of the universe and becomes visible in different forms of different things in which it has entered, in the same way this omnipresent Atman or Self becomes visible through the different forms of different things, though otherwise He remains indivisibly one and pervades through within and from without this whole of the creation as well as its different things".

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।।

टिप्पणी—इस मन्त्र का पाठ और अर्थ सर्वथा ऊपर के मन्त्र की ही भाँति है। केवल यहां 'अग्नि' के स्थान पर 'वायु' को कहा गया है। शेष सारा अर्थ प्रकार उसी है।

Note : The text and the meaning of this verse is just the same as that of its preceding one; only with the exception that here 'Vayu' replaces 'Agni'.

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ।।११।।

पदार्थ—"**(यथा)** जिस प्रकार **(सूर्यः)** सूर्य **(सर्वलोकस्य)** दृश्यमान समस्त संसार का **(चक्षुः)** प्रकाशक या ज्ञान कराने वाला नेत्र है, और इस पर भी **(चाक्षुषैः दोषैः)** चक्षु में व्याप्त होने वाले अन्धता आदि रोगों या दोषों से **(न लिप्यते)** लिप्त या ग्रस्त नहीं होता, **(तथा)** उसी प्रकार **(एकः)** अकेला होकर भी **(आत्मा)** यह आत्मा **(सर्वभूतान्तः)** सब सृष्ट पदार्थों के भीतर बसने वाला होकर भी **(बाह्यः)** उन लोकों या पदार्थों की पहुँच या उनके प्रभाव से अछूता और बाहर रहने के कारण **(लोकदुःखेन)** संसार और उसके प्राणियों को व्याप्त होने वाले दुःखों से **(न लिप्यते)** लिप्त या ग्रस्त नहीं होता। अर्थात्, वह लोक में व्याप्त होकर भी 'लोकोत्तर' बना रहता है।"

"As the Sun is not affected by any sort of eye-defects, though it is the real 'eye' for whole of this universe, in the same way that Supreme Self or Atman is also not affected by the sorrows of this universe. Though He himself fills this whole of the universe, still He remains indivisibly one and out of the perview and reach of the worldly feelings. Because after all He himself is the creator of this all".

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥१२॥

पदार्थ—"(**यः**) जो **वशी** सब को अपने बस में रखने वाला (**एकः**) अकेला होकर भी (**सर्वभूतान्तरात्मा**) सब प्राणियों के भीतर रहने वाला 'आत्मा' या 'परमात्मा' है, तथा (**यः**) जो (**एकं रूपं**) एक ही दृश्यमान रचना या 'सृष्टि' को (**बहुधा करोति**) अनेक पदार्थों या रचनाओं के रूप में परिवर्तित करता रहता है, (**आत्मस्थम्**) अपने ही भीतर स्थित (**तम्**) उस एकाकी 'पुरुष' या 'परमात्मा' को जो (**धीराः**) बुद्धिमान् और कर्मशील लोग (**अनुपश्यन्ति**) सूक्ष्मता के साथ या भीतर झाँक कर देख और समझ लेते हैं, (**तेषां सुखम्**) उनका ही सुख (**शाश्वतम्**) सदा एक समान बना रहने वाला होता है । (**इतरेषां न**) उन से भिन्न प्रकार के, अथवा अपने भीतर स्थित 'परमात्मा' को न देख पाने वाले, लोगों का सुख स्थायी नहीं होता ।"

"It is He, the lone controller of this universe, who resides in and pervades through all the created things in the

form of their 'Self' and creates 'many' out of the same form and elements. The pleasures and joys of only those wise and dutiful ones become imperishably permanent, who see through this reality and realise the fact that the Supreme Self is lying within our own Self, This is not so with the others".

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ।।१३।।

पदार्थ—"(**अनित्यानाम्**) संसार में नित्य न बने रहने वाले पदार्थों में जो एकमात्र (**नित्यः**) सदा एक सा बना रहने वाला तत्त्व है, (**चेतनानाम्**) सांसारिक विषयों का ज्ञान कराने वाले मन-बुद्धि आदि को भी (**चेतनः**) जो प्रबोध कराने वाला है, तथा (**यः**) जो (**एकः**) अकेला होकर भी (**बहूनाम्**) अनेक या असंख्य प्राणियों की (**कामान्**) इच्छाओं को (**विदधाति**) विविध रूप में पूरा करता है, ऐसे (**आत्मस्थम्**) अपने भीतर ही स्थित रहने वाले (**तम्**) उस परम आत्मा को (**ये**) जो (**धीराः**) बुद्धिमान् या कर्मशील लोग (**अनुपश्यन्ति**) भली प्रकार देख और जान लेते हैं, (**तेषां**) केवल उनको ही (**शान्तिः**) शान्ति या कल्याण (**शाश्वती**) सदा स्थिर रूप में प्राप्त होती है, (**न इतरेषाम्**) दूसरों को नहीं।"

"Only the peace and welfare of those wise and dutiful ones become imperishably permanent, who have realised or seen through the fact that that Supreme Self is lying

within themselves, which alone is everlasting amongst all the non-lasting ones as well as awakener of all the manifestations of the conscience, and which alone single-handedly fulfills the multifarious desires of all the creatures."

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम् ।
कथमेतद् विजानीयां किमु भाति विभाति वा ।।१४।।

पदार्थ—नचिकेता फिर से शंका करता है, "**(तत्)** वह **(अनिर्देश्यम्)** अनिर्वचनीय या न बताया जा सकने वाला **(परमम्)** सर्वाधिक **(सुखम्)** सुख का वास्तविक स्रोत या तत्त्व **(एतत्)** यह आप द्वारा वर्णित आत्मा ही है, **(इति मन्यन्ते)** ऐसा विद्वज्जन मानते हैं। **(तत्)** उस परमात्मा या परब्रह्म के विषय में **(कथं विजानीयाम्)** मैं यह बात किस प्रकार जान सकता हूँ कि **(किम् उ)** क्या वह **(भाति)** अपने स्वरूप में स्वयं ही प्रकाशित होता है, **(विभाति वा)** अथवा वह अपने रचे विविध लोकों और पदार्थों के माध्यम से विविध रूप में प्रकाशित होता है।"

Nachiketa asks further, "It is this Supreme Self, as described by you, which is declared as inexplicable and as the source of extreme joy. I have realized this fact. But, still, how can I get to know that whether this Supreme Self directly glows or manifests itself, or it does so through different forms of different created things."

न तत्र सूर्यो भाति, न चन्द्रतारकं,
नेमा विद्युतो भान्ति, कुतोऽयमग्निः ।।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं,
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।१५।।

पदार्थ—आचार्य उत्तर देता है, "(**तत्र**) उस आत्मा के विस्तृत और अनन्त प्रकाश के सम्मुख या उसके भीतर (**न सूर्यः भाति**) न तो सूर्य ही चमकता प्रतीत होता है, (**न चन्द्रतारकम्**) न ही चन्द्रमा और तारे, (**न विद्युतः**) और न ही आकाशीय बिजलियां (**भान्ति**) प्रकाशित होती प्रतीत होती हैं। अर्थात्, उसका प्रकाश इन सब से कहीं अधिक बढ़कर और इनके प्रकाशक के रूप में स्थित है। तब उसके सम्मुख (**अयम् अग्निः**) यह अग्नि तो (**कुतः**) चमक ही कहां सकता है? (**तं भान्तम् एव**) ज्योतिमान् उस परब्रह्म की आभा के (**अनु**) अनुकूल ही (**सर्वम्**) उक्त सभी चीज़ें (**भान्ति**) प्रकाशित होती हैं। (**इदं सर्वम्**) ये सभी ज्योतित पदार्थ (**तस्य भासा**) उसकी ज्योति या चमक से ही (**विभाति**) विविध रूप में प्रकाशित होते हैं।"

व्याख्या—केवल उस परमब्रह्म की ज्योति ही स्वयं प्रकाशमान है। जगत् की शेष ज्योतियाँ उस मूल ज्योति से ही प्रकाश पाकर विविध रूप में ज्योतित होती हैं।

Acharya replies, "Neither the Sun, Moon, Stars, or Lightning exhibit their glow in the face of that Supreme Divine light or glow, nor they illumininate Him in any way. Then, how this earthly Agni or fire can glow before Him, or illuminate Him. All the things glow reflecting only His glow. It is His glow, which illuminates all things in many forms and many ways".

द्वितीय अध्याय : तृतीय वल्ली

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे, तदु नात्येति कश्चन ।।
एतद्वै तत् ।।१।।

पदार्थ—आचार्य फिर कहता है, "(**एषः**) यह (**सनातनः**) सदा से एक ही रूप में चला आने वाला (**अश्वत्थः**) पीपल का वृक्ष है, (**ऊर्ध्वमूलः**) जिसका मूल ऊपर की ओर है, एवं (**अवाक्शाखः**) जिसकी शाखाएं नीची की ओर फैली हुई हैं। परन्तु यह पीपल का वृक्ष कोई भौतिक वृक्ष नहीं है। बल्कि, (**तद् एव**) वह स्वयं ही (**शुक्रम्**) ज्योतिष्मान् एवं परम पवित्र तत्त्व है। (**तद् ब्रह्म**) यह स्वयं ही बृंहणशील एवं नित्य व्यापक ब्रह्म है, तथा (**तद् एव अमृतम् उच्यते**) इसे ही सदा 'अमृत' या अमरणधर्मा तत्त्व भी कहा जाता है। (**तस्मिन्**) इस सर्वव्यापक परब्रह्म रूपी वृक्ष पर ही (**सर्वे लोकाः श्रिताः**) सब लोक-लोकान्तर स्थित और आश्रित हैं। (**तद् उ**) इसे ही (**कश्चन**) कोई भी (**न अत्येति**) लाँघ कर नहीं जा सकता। अर्थात्, कोई भी इससे अधिक बड़ा नहीं बन सकता। (**एतत् वै तत्**) वह वृक्ष ही यह **ब्रह्म है**"।

टिप्पणी—'पीपल' की यह उपमा **तैत्तिरीय आरण्यक** एवं **श्रीमद्-भगवद्गीता** में भी दी गई है। तीनों ही जगह मन्त्र का पूर्वार्ध मिलता-जुलता है, जबकि उत्तरार्ध में किंचित् अन्तर मिलता है। इस में एक विचित्र उपमा के द्वारा जगत् की उत्पति और फैलाव को बताया गया है।

'ऊर्ध्व' अर्थात् 'ब्रह्म' से निकलकर यह संसार नीचे की ओर फैला हुआ है। इस का 'मूल' बन कर जो ब्रह्म स्थित है, वही स्वयं सर्वत्र इस में व्याप्त एवं क्रियारत है। इस संसार की कोई भी वस्तु उससे बढ़ कर नहीं हो सकती। क्योंकि अन्ततः यह संसार उसकी ही सृष्टि है।

"This Peepal-tree remains constantly and unchangingly the same as ever. Its roots are spread upwards and the branches downwards. This tree is nothing but the Supreme Self itself and, therefore, it is called self-resplendent, pure, ever-expanding and evertasting, or imperishable one. All the creations or worlds are situated within its own vast expanse. Nothing can overgrow it. Thus, this tree is nothing but the Supreme Self or Brahman itself".

यदिदं किं च जगत् सर्वं, प्राण एजति निःसृतम्।
महद्भयं वज्रमुद्यतं, एतद् ये विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥२॥

पदार्थ—"(**यत् इदम्**) यह जो (**किं च**) कुछ भी (**जगत्**) गतिशील संसार या सृष्टि है, (**सर्वम्**) वह सब (**प्राणे एजति**) प्राण के गतिशील रहने पर ही (**निःसृतम्**) चलता या जीता रहता है। अर्थात्, इस संसार में सभी गतिशील जीव या पदार्थ केवल साँस चलते रहने तक ही जीवित रहते हैं। इसलिए प्राणों के रुक जाने का अर्थ मृत्यु है। यह मृत्यु (**महत् भयम्**) बड़े भारी भय का कारण है, तथा (**उद्यतं वज्रम्**) उठे हुए वज्र के समान है। अर्थात्, प्राणों के रुक जाने का डर ही हमारे लिए सदा बना रहता है। (**ये एतत् विदुः**) जो व्यक्ति बात इस सत्य को समझ लेते हैं कि यह डर केवल भौतिक शरीर के लिए है और 'आत्मा'

कभी नष्ट नहीं हो सकता, (ते) आत्मा की अमरता को जानने वाले ऐसे लोग (अमृताः भवन्ति) मृत्यु के भय से रहित होकर 'अमर' बन जाते हैं।"

"Whosoever knows thisf act, that all this moving world acts or lives only while the physical breath and energy remains active and that the stoppage of activity is a great frightening factor for us, as if it is a democles sword hanging always over our head, becomes immortal. It is so because of the fact that he then knows that the Self or Soul remains unaffected by the activity or stoppage of the breath and, thus, remains immortal".

भयादग्निस्तपति, भयात्तपति सूर्यः ।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च, मृत्युर्धावति पञ्चमः ।।३।।

पदार्थ—"(**अग्निः**) यह लौकिक अग्नि (**भयात्**) विनाश या रुकने के भय से ही (**तपति**) तपता है। (**सूर्यः**) सूर्य भी (**भयात् तपति**) अपने भौतिक विनाश के भय से ही ताप और प्रकाश देने में लगा रहता है। (**इन्द्रः च वायुः च**) इन्द्र और वायु भी (**भयात्**) इस प्रकार के भय से ही ग्रस्त रहते हैं। (**पञ्चमः मृत्युः धावति**) इनके अतिरिक्त पांचवीं शक्ति के रुप में मृत्यु भी अपने अस्तित्व के रुक जाने के भय से ही दौड़ता रहता है।"

व्याख्या—यहां इन पाँचों को 'मृत्यु या विनाश के भय से ग्रस्त' बताया गया है। वास्तविकता यह है कि संसार के जीवन की नियामक ये पाँचों ही शक्तियां अपनी शक्ति और सत्ता उस परम ब्रह्म से ही ग्रहण

करती हैं, जो सर्वोच्च है। इस प्रकार उनका अस्तित्व और विनाश उस परम सत्ता की कृपा पर वैसे ही आश्रित है, जिस प्रकार शरीरधारियों की सत्ता प्राणों पर। यहां इन पाँचों शक्तियों के भौतिक रूप के ही विनाश-सम्बन्धी भय की चर्चा की जा रही है। इनका दिव्यशक्तिमय रूप तो परम ब्रह्म के ही विविध पक्षों का प्रतिनिधि है।

"Agni, Surya, Indra and Vayu, alongwith the Death or Mrityu as the fifth, engage themselves in their respective activities, remaiing always afraid of the stoppage or withdrawal of their respective powers, which they derive from the Supreme Source, i.e., Brahman. Thus, the only immortal element is that Brahman or Supreme Self."

इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक्शरीरस्य विस्रसः ।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥४॥

पदार्थ—"(**चेत्**) यदि (**शरीरस्य विस्रसः प्राक्**) शरीर के विनाश होने से पूर्व (**इह**) इस जीवन में ही कोई आत्मा (**बोद्धुम्**) इस 'अमरता' के रहस्य को जानने में (**अशकत्**) समर्थ हो जाता है, (**ततः**) तब वह (**सर्गेषु**) नई-नई सृष्टियों के निर्माण के अवसर पर (**लोकेषु**) पुनः-पुनः रचे जाने वाले दृश्य संसारों या लोकों में (**शरीरत्वाय**) अपनी रुचि के अनुसार शरीर धारण करने या जन्म लेने में (**कल्पते**) समर्थ हो जाता है। अर्थात्, आत्मा की अमरता को जानने के बाद उसे शरीर-ग्रहण में कोई भय नहीं रहता, और तब वह अपनी रुचि और इच्छा के अनुसार जन्म ले सकता है।"

टिप्पणी—विविध विद्वानों ने इसका अर्थ खींच-तान कर किया है। उनके अर्थ का सार यह है: "अच्छा है कि मनुष्य इस जीवन में ही

अमरता के रहस्य को जान ले, नहीं तो उसे बार-बार जन्म लेना पड़ेगा।" वास्तव में जिसने भी आत्मा की अमरता को जान लिया, उसे पुनः-पुनः शरीर ग्रहण करने में भय कैसा ? तब तो वह जीवन की वास्तविकता को जानकर उसका स्वामी हो जाता है; उससे डरता नहीं। उपनिषद् का ऋषि संसार से भागकर किसी 'मुक्ति' को पाने की बात नहीं कहता। उसकी दृष्टि में जीवन को 'अमरता' के साथ ही जीना चाहिए।

"If one can only know the fact about the immortality of soul, before leaving his body by way of death, then he becomes really capable to select and acquire new bodies by way of new births, in the new creations and in new worlds, at his own free will. It is so mainly because of the fact that then he remains no more afraid of the destruction or death of these bodies".

यथाऽऽदर्शे तथाऽऽत्मनि, यथा स्वप्ने तथा पितृलोके ।
यथा अप्सु परीव ददृशे तथा
गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ॥५॥

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत् ।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति ॥६॥

पदार्थ—"जो व्यक्ति (**यथा आदर्शे तथा आत्मनि**) आत्मा को शीशे या दर्पण के समान सर्वथा अप्रभावित एवं शुद्ध मानकर आचरण करता है; (**यथा स्वप्ने तथा पितृलोके**) माता-पिता के घर की भाँति ही इस जन्म-मरण वाले संसार में उसी तरह निर्लिप्त और द्रष्टा मात्र रह कर आचरण करता है जैसे स्वप्न में; और (**यथा अप्सु इव तथा परिददृशे**)

जिस प्रकार कोई तैरने वाला पानी में रहकर भी चारों ओर देखता है, उसी तरह जो इस संसार में रह कर भी चारों ओर खुली दृष्टि से देखता है, अथवा जो जल के समान सर्वत्र एक ही तत्त्व को अनन्त विस्तारमय पाता है; तथा जो व्यक्ति (**गन्धर्वलोके ब्रह्मलोके छायातपयोरिव ददृशे**) इन्द्रियों के उपभोग्य संसार को और ज्ञान एवं ब्रह्म के लोक को क्रमशः अन्धकार और प्रकाश की भाँति भिन्न-भिन्न स्वभाव वाला जान लेता है, वह (**धीरः**) बुद्धिमान् और कर्मशील व्यक्ति (**पृगुथत्पद्यमानानाम्**) पृथक्-पृथक् उत्पन्न होने वाली (**इन्द्रियाणाम्**) इन्द्रियों की (**पृथग्भावम्**) परस्पर पृथक्ता को, (**यत् उदयास्तमयौ च**) तथा यह जो उनकी सजीवता एवं निर्जीवता है उसको, (**मत्वा**) जान और समझ कर (**न शोचति**) इस शरीर के आविर्भाव और विलोप के विषय में किसी प्रकार का शोक नहीं करता।"

व्याख्या—जो अपने आत्मा को दर्पण की भाँति निर्मल, अप्रभावित एवं निर्लिप्त रखता है, गृहस्थी होकर भी स्वप्न में अलिप्त आत्मा की भाँति सांसारिक कर्मों में अनासक्त रहकर कार्य करता है, जल की भाँति समरस दृष्टि से सब ओर देखता है, तथा गन्धर्व लोक या विषय-वासना के संसार को एवं ब्रह्मलोक या ज्ञानमय आध्यात्मिक जगत् को क्रमशः अन्धकार और प्रकाश की भाँति भिन्न-भिन्न पाता है, वह इन्द्रियों और उनके विषयों की अनित्यता को पहचानने के बाद देह के जन्म और विनाश के विषय में कभी शोक नहीं करता।

"That wise and dutiful person never regrets over the birth or death of this mortal body, who after knowing the limitations and separation of each individual sense and sensory organs, leads his life in the following manner : he keeps his soul unattached and unaffected like a mirror ; he behaves as an observer of a dream

while carrying on his worldly duties; he sees the same element spreading and pervading all-around as one sees in the ocean, and he realizes the truth that the sensuous and the spiritual worlds are as apart and different from each other as are the shadow and the sunlight, both representing darkness and light respectively".

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् ।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ।।७।।

पदार्थ—"(**इन्द्रियेभ्यः**) इन्द्रियों की अपेक्षा (**सत्त्वम्**) सत्ता को अनुभव करने वाली बुद्धि, या अस्तित्व बुद्धि, (**उत्तमम्**) श्रेष्ठतर है। (**सत्त्वाद् अधि**) इस सत्त्वबुद्धि से भी वढ़कर है (**महान् आत्मा**) महत्त्व से युक्त बुद्धि या सूक्ष्म रूपा प्रकृति, जिसमें विस्तार और प्रसार की भावना जागने लगी है। (**महतः**) इस 'महत्' या 'विस्तार भावना से युक्त' प्रकृति की अपेक्षा भी (**उत्तमम्**) अविक श्रेष्ठ तत्त्व है (**अव्यक्तम्**) अव्यक्त रूप में रहने वाली मूल प्रकृति"।

टिप्पणी—इसमें सांख्य दर्शन के सृष्टिक्रम को उलटे ढंग से लिया गया है। पिछले श्लोक में इन्द्रियों को अनित्य बताया गया है। यहाँ उनकी अपेक्षा उच्च से उच्चतर तत्त्व को गिनाया जा रहा है। यहाँ प्रकृति के 'अव्यक्त' रूप को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। किन्तु, यह रूप भी स्वतन्त्र होकर कार्य नहीं करता। अतः अगले पद्य में इससे भी ऊँचे तत्त्व को बताया गया है।

"Mind is superior than the senses. Sattva or existential feeling is superior to this mind. The expanding, great and minute stage of the nature is far more superior

to this Sattva. But Axyakta or unmanifest form of the Nature is still more superior to this expanding Nature".

अव्यक्तात्तु परः पुरुषः, व्यापकोऽलिंग एव च ।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ॥८॥

पदार्थ—"(**अव्यक्तात्**) प्रकृति के इस अव्यक्त रूप से भी (**परः**) श्रेष्ठ और उच्च तत्त्व (**पुरुषः**) पुरुष या परम आत्मा है, जो (**व्यापकः**) सर्वत्र व्यापक है, (**अलिंगः एव च**) और किसी भी बाह्य इन्द्रियादि के चिह्न या पहचान से रहित है, तथा (**यम्**) जिसे (**ज्ञात्वा**) जानकर (**जन्तुः**) उत्पन्न होने वाला या जन्म लेने वाला प्राणी (**मुच्यते**) दुःखादि से छूट जाता है (**अमृतत्वं च**) और अमरता की स्थिति को (**गच्छति**) प्राप्त करता है।"

"Puiusha or the Supreme Self is far superior even to this Avyakta. He is omnipresent and has no external signs or significations, It is He, after knawing whom any person bebomes devoid of any kind of soorows and gets to the state of immortality".

न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य,
न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥९॥

पदार्थ—"(**अस्य**) इस पुरुष का (**रूपम्**) रूप (**सन्दृशे**) नेत्रों द्वारा देखने के लिए (**न तिष्ठति**) प्राप्त नहीं होता। अर्थात्, उसे देखा नहीं

जा सकता। (**कश्चन**) कोई भी (**एनम्**) इस पुरुष को (**चक्षुषा**) इन आँखों से (**न पश्यति**) देख नहीं सकता। किन्तु (**ये**) जो लोग (**एतत्**) इसके रूप को (**हृदा**) हृदय से, (**मनीषा**) बुद्धि से, तथा (**मनसा**) मन से (**अभिकृतः**) अभिकल्पित या घड़े हुए रूप में (**विदुः**) जान लेते हैं, (**ते**) ऐसे लोग (**अमृताः**) मृत्यु के भय से रहित या अमर (**भवन्ति**) हो जाते हैं।"

"Its beauty or appearance does not fall within the perview of our vision. No one can see him through these physical eyes. But those become immortal or fear-less about death, who come to know and see Him by divi-ning His form within their own heart, intellect and mind".

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते, तामाहुः परमां गतिम् ॥१०॥

पदार्थ—"(**यदा**) जब और जिस स्थिति में (**पंच ज्ञानानि**) ज्ञानेन्द्रियों के पाँचों प्रकार के विषय-सम्बन्धी ज्ञान बहिर्मुख न रहकर (**मनसा सह**) मन के साथ ही केन्द्रित होकर (**अवतिष्ठन्ते**) स्थित रहते हैं, (**बुद्धिः च**) तथा जब बुद्धि भी (**न विचेष्टते**) सांसारिक विषयों की ओर गति नहीं करती, (**तां गतिम्**) उस स्थिति को (**परमाम् आहुः**) सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।"

"When all the objects of our five senses are concent-rated and stay under control of our mind and when even the intelligence does not work externally, that particular state has been declared as the supreme and the best State."

**तां योगमिति मन्यते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ।।११।।**

पदार्थ—"विद्वज्जन (**ताम्**) इस प्रकार की (**स्थिराम्**) आत्मकेन्द्रित की हुई (**इन्द्रियधारणाम्**) इन्द्रियों की नियन्त्रित स्थिति को (**योगम् इति**) योग के रूप में (**मन्यन्ते**) मानते हैं। (**तदा**) उस स्थिति में साधक का आत्मा (**अप्रमत्तः**) प्रमादरहित और सजग (**भवति**) हो जाता है, (**हि**) क्योंकि (**योग**) योग ही उस साधक के लिए (**प्रभवाप्ययौ**) कर्मों या जीवन-व्यापारों के **आरम्भ** और **उपसंहार** का नियामक बन जाता है। अथवा, उस स्थिति में योग ही **साधन** और **साध्य** बन जाता है"। तब साधक आत्मा का लक्ष्य उसी स्थिति को पाना और बनाए रखना हो जाता है।

"That state of continuously controlled sensuous behaviour is known as Yoga. After attaining this, the soul becomes vigilant. For him, Yoga then becomes the only means as well as the only aim".

**नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ।।१२।।**

पदार्थ—"वह आत्मा (**न एव वाचा**) न तो वाणी के ही द्वारा, (**न मनसा**) न मन के द्वारा, और (**न चक्षुषा**) न आंखों के द्वारा ही (**प्राप्तुं शक्यः**) प्राप्त किया जा सकता है। फिर भी (**'अस्ति' इति ब्रुवतः**) 'उसका अस्तित्व है'—ऐसा मानने वालों के लिए (**अन्यत्र**) उक्त रीति से भिन्न रूप में (**तत्**) वह आत्मतत्त्व (**कथम् उपलभ्यते**) कैसे जाना और पाया जा सकता है?"

"That Self or Supreme Self cannot be attained or known with the help of either speech, mind or eyes. Still there is no alternative to the recongintion of its existence. We shall have to accept its existence and presence".

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः ।
अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ॥१३॥

पदार्थ—"वह आत्मा या पुरुष, (**'अस्ति' इति एव**) 'वह है'—इस प्रकार की अनुभूति एवं स्वीकृति के रूप में तथा (**तत्त्वभावेन**) अपने स्वरूप एवं प्रकृति के ज्ञान के रूप में, (**उपलब्धव्यः**) जाना और पाया जा सकता है। (**उभयोः**) इन दोनों में से भी (**'अस्ति' इति एव उपलब्धव्यस्य**) 'वह है'—इस रूप में उसकी सत्ता की अनुभूति होने के बाद ही उसकी उपलब्धि (**तत्त्वभावेन**) प्रकृति और स्वरूप के ज्ञान के रूप में भी (**प्रसीदति**) स्वतः सम्भव हो पाती है।"

व्याख्या—आत्मा का ज्ञान दो रूप में हो सकता है, 'उसकी सत्ता की स्वीकृति' के रूप में तथा 'उसकी प्रकृति और स्वरूप के विवेचनात्मक ज्ञान' के रूप में। इनमें से पहले उसकी सत्ता की अनुभूति और स्वीकृति होनी आवश्यक है, तभी विवेचनात्मक ज्ञान भी सम्भव हो पाता है।

"The knowledge of that Self is possible in two ways: in the form of the 'recongnition of its existence' and in the form of its 'elemental and realistic knowledge'. Even amongst these two, the second type of knowledge can be attained only after the attainment of that of first type".

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ।।१४।।

पदार्थ—"(यदा) जब (सर्वे) वे सब (कामाः) कामनाएं या इच्छाएं, (ये) जो (अस्य) इस मनुष्य के (हृदि) हृदय में (श्रिताः) स्थित या पनप रही हैं, (प्रमुच्यन्ते) छूट जाती हैं या त्याग दी जाती हैं, (अथ) तब ही (मर्त्यः) मरणधर्मा मनुष्य (अमृतः) मरण के भय से रहित अथवा अमर (भवति) हो पाता है। तब वह (अत्र) इस जीवन में रहता हुआ ही (ब्रह्म) परम सत्ता या ब्रह्म को (समश्नुते) भली प्रकार पा लेता है।"

"When all the desires, rising or flourishing in his heart, are left behind, then only this mortal man really becomes fearless about the death and, thus, becomes immortal. After having this sense of immortality, he realises and relishes his own ultimate union with Supreme Self".

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः ।
अथ मर्त्यो ऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम् ।।१५।।

पदार्थ : "(यदा) जब (इह) इस जीवन और संसार में (हृदयस्य) मानव हृदय की (सर्वे) सभी (ग्रन्थयः) ग्रन्थियां या पूर्वाग्रह (प्रभिद्यन्ते) खुल या टूट जाते हैं, (अथ) तभी (मर्त्यः) मरणधर्मा मनुष्य (अमृतः) अमरणधर्मा या अमर (भवति) हो जाता है। अर्थात्, तब वह अपने आत्मा को अमर मानकर आचरण करने लगता है। (एतावत् हि) बस इतना ही (अनुशासनम्) उपदेश है। अथवा, केवल इतनी बात समझना ही पर्याप्त है।"

"When all the knots or doubts of a man's heart are removed on resolved, then he really becomes immortal; though still he remains literally mortal. This aforesaid sermon or lesson is quite sufficient in the present context".

शतं चैका च हृदयस्य नाड्य-
स्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका ।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति
विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥१६॥

पदार्थ—"(**हृदयस्य नाड्यः**) हृदय की नाड़ियां (**शतं च एका च**) एक सौ एक हैं। (**तासाम्**) उन में से (**एका**) एक (**मूर्धानम् अभि**) मूर्धा, तालु या ब्रह्मरन्ध्र की ओर (**अभिनिःसृता**) चली जाती है। (**तया**) इस ब्रह्मरन्ध्र या मूर्धा की ओर जाने वाली नाड़ी के माध्यम से ही (**ऊर्ध्वम् आयन्**) ऊपर की ओर उठता हुआ, अर्थात् कामनाओं को त्याग कर उनसे ऊपर उठता हुआ, साधक आत्मा (**अमृतत्वम्**) मरण के भय से रहित स्थिति और अनुभूति को अथवा अमरता को (**एति**) पा लेता है। (**अन्याः**) इस से भिन्न अन्य सब नाड़ियां (**उत्क्रमणे**) देह से प्राणों के निकलते समय (**विष्वङ्**) चारों ओर फैली भावनाओं या सांसारिक बन्धनों में (**भवन्ति**) लिपटी रहती हैं। अतः उस अमरता की ओर ले जाने वाली नाड़ी को ही साधने का प्रयास करना अभीष्ट है।"

"Hundred and one nerves spread out from the heart. Only one of them leads towards the centre of the head. Only by controlling this nerve, one rises above and feels himself as immortal. All the other nerves lead us towards

worldly senses, even while one might be leaving the world at the time of his own death".

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा,
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ।
तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेत् मुञ्जाद् इवेषीकां धैर्येण ।
तं विद्याच्छुक्रममृतम्, तं विद्याच्छुक्रममृतम् ॥१७॥

पदार्थ—"(**जनानाम्**) मनुष्यों के (**हृदये**) हृदय में (**सदाः**) सर्वदा (**अन्तरात्मा**) अन्तरात्मा बनकर, अर्थात् मनुष्य के आत्मा के रूप में, (**अंगुष्ठमात्रः**) अंगूठे जितने स्वरूप, परिमाण या आकार वाला (**पुरुषः**) वह पुरुष या परम आत्मा (**संनिविष्टः**) प्रविष्ट हुआ या समाया हुआ है। (**तम्**) उस अन्तरात्मारूप पुरुष को (**धैर्येण**) बुद्धि और धैर्य के साथ (**स्वात् शरीरात्**) अपने शरीर में से ही उसी प्रकार से (**प्रवृहेत्**) भली प्रकार चयन करले, अथवा संचय करके पहचान ले, (**इव**) जैसे (**मुञ्जात्**) मूँज में से (**इषीकाम्**) उसकी छड़ों को अलग करके उन्हें एकत्रित किया जाता है। (**तम्**) इस प्रकार अपने शरीर के भीतर ही पहचानते हुए उस पुरुष को ही (**शुक्रम्**) शुद्ध ज्योतिरूप एवं (**अमृतम्**) सदा अमर रहने वाला तत्त्व (**विद्यात्**) जाने"। अर्थात्, जो 'पुरुष' अन्तरात्मा बन कर हमारे देह में रहता है, उसे ही जानना अभीष्ट एवं उचित है। वही सच्चा 'अमर' तत्त्व है।

"That great Self, i.e., Purusha, lives always in the minute form within the hearts of all the beings. One must try to sort Him out cautiously and patiently from within his own body, as one sorts out the stalks from the Jute stems. It is He, who must be recognised as Self-resplendent and immortal one".

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा
विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम् ।
ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद् विमृत्यु-
रन्यो ऽप्येवं यो ऽविदध्यात्ममेव ।।१८।।

पदार्थ—"(अथ) इस प्रकार (मृत्युप्रोक्ताम्) मृत्यु या यमरूपी आचार्य के द्वारा बताए गए (एताम्) इस (विद्याम्) जानने योग रहस्य को (कृत्स्नं योगविधिं च) एवं इसकी उपलब्धि के लिए की जाने वाली सम्पूर्ण योग-प्रक्रिया को (लब्ध्वा) पाकर और जानकर, (नचिकेतः) हे नचिकेता, तुम तो (ब्रह्मप्राप्तः) ब्रह्म और तत्सम्बन्धी ज्ञान को पा ही चुके हो तथा इस प्रकार तुम (विरजः) भौतिक दुःखों से रहित एवं (विमृत्युः) मृत्यु के भय से रहित (अभूत्) हो ही गए हो। (अन्यः अपि) तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई साधक भी (एवम् एव) इसी प्रकार से अमरता के रहस्य को जानकर ब्रह्म को जान और पा सकता है।"

"After knowing this secret knowledge and the entire process of Yoga, as told by Mrityu the teacher, undoubtedly, O Nachileta, you have got the true knowledge and established union with the Supremc Self, and thereby have attained the ultimate sorrowless and immortal state. Anyone else can also attain the same state, if only he knows the secrets of the Self in the aforesaid manner".

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

वे द प्र ति ष्ठा न

नई दिल्ली